

पल्लीवाल जैन इतिहास

संशोधक—

श्री अगरचन्दजी नाहटा, बीकानेर

लेखक—

श्री दौलतसिंहजी लोढा 'अरविन्द', धामनिया

द्रव्य सहायक—

श्री मिट्ठनलालजी कोठारी, भरतपुर

प्रकाशक—

श्री नन्दनलाल जैन पल्लीवाल, भरतपुर

वीर संवत २४८८
विक्रम सं० २०१९

मूल्य
२) दो रुपया

प्रकाशक—
नन्दनलाल जैन
पाईबाग, भरतपुर



मुद्रक—
वीरेन्द्रसिंह जैन
कुशल प्रेस
छिलीईंट रोड, आगरा

नम्र—निवेदन

आज सतत २५ वर्षों के परिश्रम के पश्चात 'श्री पल्लीवाल जैन इतिहास' पाठकों के कर कमलों में प्रस्तुत करते हुए मुझे अपार आनन्द हो रहा है।

प्रथम मुनिराज श्री दर्शनविजयजी महाराज त्रिपुटी ने इस कार्य में प्रयास किया। उसके पश्चात जैन साहित्य रत्न सेठ अगरचन्दजी साहब नाहटा का 'पल्लीवाल इतिहास' के सम्बन्ध में एक विद्वत्ता पूर्ण लेख श्री आत्मानन्द जन्म शताब्दी स्मारक ग्रंथ में पढ़ने को मिला। फिर पता लगा कि अजमेर निवासी श्री जुगेनचन्द्रजी के पास इस विषय की सामग्री का हस्तलिखित अच्छा संग्रह है। उनसे सम्पर्क स्थापित करके वह प्राप्त किया एवम् श्री अगरचन्दजी नाहटा से पत्र व्यवहार करके पल्लीवाल जैन इतिहास के लिखाने में सहयोग मिलने का आश्वासन लिया।

श्री नाहटाजी ने अपनी देख रेख में यह 'पल्लीवाल जैन इतिहास' श्री दौलतसिंहजी लोढा 'अरविन्द' से लिखवाने का कष्ट उठाया। अतः मैं मुनिराज श्री दर्शनविजयजी महाराज, श्री जुगेनचन्द्रजी, श्री अगरचन्दजी नाहटा और दौलतसिंहजी लोढा का आभार मानता हूँ। उपरोक्त सज्जनों के सहयोग से ही बड़ी खोज के पश्चात यह इतिहास प्रकाशित कराने की मेरी और मेरे पिताजी आदरणीय श्री मिट्ठनलालजी कोठारी की सदिच्छा पूर्ण हो सकी है।

इस पुस्तक में यथा सम्भव पल्लीवाल जैन रत्नों के परिचय देने का प्रयत्न किया गया है परन्तु फिर भी २० वीं शताब्दी के कई रत्नों का जैसे श्री सन्तलालजी, श्री शङ्करलालजी, श्री गणेशीलालजी, श्री शादीलालजी, श्री वसन्तीलालजी, श्री मोतीलालजी, श्री रतनलालजी, श्री भज्जूलालजी आदि जिन्होंने पंच महाव्रत धारण करके दीक्षा अङ्गीकार की थी, उनके परिचय प्राप्त करने में मुझे सफलता प्राप्त नहीं हो सकी, जिसका खेद रहा है। फिर भी जितनी सामग्री संग्रह की जा सकी है, उसके प्रकाशन से श्री पल्लीवाल जैन जाति के गौरव पर अच्छा प्रकाश पड़ा है। आशा है कि इतिहास प्रेमियों के लिए यह पुस्तक बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

इस पुस्तक की सामग्री संग्रह करने में उपरोक्त चारों विद्वानों के अतिरिक्त जिस किसी भाई से मुझे तनिक भी सहयोग मिला है उन सभी कृपालुओं का हृदय से आभार मानता हूँ।

विनीत—नन्दनलाल जैन, भरतपुर (राजस्थान)





दो शब्द

प्राग्वाट-इतिहास के लेखन के समाप्ति-काल पर मैं श्री नाहटाजी से बीकानेर में मिला था। इनके सौजन्यपूर्ण व्यवहार को देखकर मुझ को इस बात पर पश्चात्ताप हुआ कि ऐसे सरल हृदयी विद्वान से मुझको बहुत पूर्व ही मिलना चाहिए था। खैर! श्री नाहटाजी ने उक्त इतिहास के लिये एक लम्बी भूमिका लिखी। मैं इनके कुछ निकट आया। तत्पश्चात् मेरी २-४ छोटी कृतियां निकलीं। 'जब श्रीमद् राजेन्द्रसूरि स्मारक ग्रंथ' जैसे बृहद् कार्य का भार मेरे पर आ पड़ा, उस समय पंडित सुखलालजी, पं० लालचन्द भगवानदास गांधी और आपने पूरा २ सहयोग देने का वचन दिया। आपने तो वचन ही नहीं दिया, परन्तु उक्त बृहद् ग्रंथ को उन्नत से उन्नत स्थिति में निकालने की सम्पूर्ण जिम्मेदारी अपने कंधों पर उठाली। आपके सम्पादकत्व से वह ग्रंथ अपनी भांति के ग्रंथों में नाम कमा गया। यह लिखने का आशय मात्र यही है कि विद्वान् वही है जो अपनी विद्वत्ता से दूसरों को उठाता है। यह गुण नाहटाजी में घर जमा कर बैठा है। इसमें तनिक सन्देह नहीं। ऐसे कई विद्वान् देखें हैं जो छोटों से बात करने तक में शर्माते हैं, अपना समय का अपव्यय करना समझते हैं और छोटा अगर कुछ लिखकर उनको दे दे तो कुछ चांदी के टुकड़े देकर उस पर अपना नाम चढ़ाते नहीं शर्माते हैं। यहां दोनों ही गिरते हैं। यह अवगुण जिसमें नहीं, वह ही सच्चा सरस्वती का पुजारी है।

श्री नाहटाजी ने दिनाङ्क ६-११-६१ के कार्ड में मुझको लिखा कि—"भरतपुर के श्री नन्दनलाल पल्लीवाल मुझे ईतिहास लिख देने अथवा मेरी देख रेख में लिखवा देने का कई मास से अनुरोध कर रहे हैं और उन्होंने कुछ सामग्री भी मुझे भेज दी हैं। अन्त में नाहटाजी ने मुझे लिखा "मैं तुमसे यह कार्य करवा कर अपनी जिम्मेदारी से तुरन्त हलका होना चाहता हूँ।"

मैं आपके आग्रह को कैसे टाल सकता था और टालने जैसी बात भी नहीं। फिर आपका मेरे पर जो स्नेह और अनुग्रह है। परन्तु मैं श्री यतीन्द्रसूरि-अभिनन्दन ग्रंथ के मुद्रण का कार्य वम्बई साढ़े तीन मास रह कर करके लौटा ही था अतः आपकी इच्छानुसार मैं इस कार्य को तुरन्त तो प्रारम्भ नहीं कर सका, फिर भी आपसे मिलने के लिए मैं दिसम्बर १३ शनिवार को बीकानेर के लिये रवाना हुआ। बीकानेर में मैंने ता० १६ पर्यंत ठहर कर प्राप्त सामग्री का अवलोकन किया और प्राप्य सामग्री के टिप्पण तैयार करके भीलवाड़ा ता० २०-१२-५८ को लौट आया। फिर परिश्रम पूर्वक इस कार्य को पूर्ण किया।

श्री नाहटाजी की कृपा से पल्लीवाल जाति का इतिहास लिखने का जो सौभाग्य मुझको प्राप्त हुआ है, मैं श्री नाहटाजी का अत्यन्त आदर करता हूँ। श्री नन्दनलालजी पल्लीवाल, भरतपुर ने जो सामग्री तत्परता एवं उत्साह से एकत्रित करके नाहटाजी के द्वारा मेरे पास भेज दी, उससे मुझको सामग्री जुटाने में बहुत कम श्रम करना पड़ा और कार्य भी शीघ्र सम्पन्न हो गया। इसके लिये और उनके जाति प्रेम के लिये उनकी हृदय से सराहना करता हूँ।

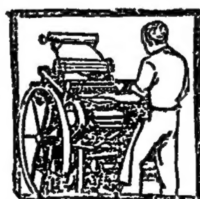
प्रकाशित जैन प्रतिमा लेख सम्बन्वी पुस्तकों पर प्रकाशित प्रशस्ति ग्रंथों और पल्लीवाल ज्ञाति द्वारा प्रकाशित (Census Report 1920 A. D. पर एवं वि० सं० १६७० में प्रकाशित 'रीति-रश्म' पुस्तक तथा श्री नन्दनलाल पल्लीवाल द्वारा संग्राहित इतर सामग्री पर यह प्रस्तुत लघु इतिहास अपना ढाँचा रच पाया है।

पल्लीवालगच्छ और पल्लीवालजाति का प्रतिबोधक और प्रतिबोधित का संबंध रहा है। अतः एक-दूसरे को प्राचीनता एवं गौरव में एक-दूसरे का भाग सम्मिलित है। इस दृष्टि से पल्लीवालगच्छ की प्राप्त दो पट्टावलियां, पल्लीवालगच्छ-साहित्य और पल्लीवालगच्छीय आचार्यों के प्रतिष्ठित लेख यथा प्राप्त परिशिष्ट में दे दिये गये हैं। परिशिष्ट में सचमुच श्री नाहटाजी का लेख 'पल्लीवालगच्छ पट्टावली' जो श्री आत्मानन्द अर्धशताब्दी ग्रन्थ में प्रकाशित हुआ हैं, पूरा २ सहायक हुआ है और वंसे तो श्री नाहटाजी इस ग्रन्थ के लिखाने वाले होने से मेरे निकट अति आदरणीय हैं कि जिनकी कृपा से मैं पल्लीवाल जाति का इतिहास जान सका और लिख सका।

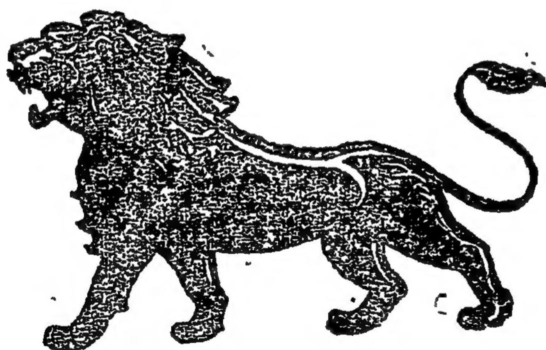
अन्त में जिन २ विद्वानों की कृतियों का इस लघु वृत्त के लिखने में उपयोग हुआ है उन सर्व के प्रति आभार प्रदर्शित करता हूँ और कामना करता हूं कि पाठक इसका सम्मान करेंगे तो मैं अपनी इस तुच्छ सेवा को भी महत्वशाली समझूंगा। शुभम्।

१३-१-१९५९ — दौलतसिंह लोढ़ा 'अरविंद' बी० ए०

सरस्वती विहार
भीलवाड़ा (मेवाड़)



❀ सूचानिका ❀





भूमिका

यशः शेष उत्साही इतिहास-प्रेमी लेखक दौलतसिंहजी लोढ़ा अपर-नाम कवि 'अरविन्द' की प्रतिकृति, इस इतिहास के पृ० १८६ में है और वहां पृ० १८६ से १८९ तक उसका उचित परिचय श्री जवाहरलाल लोढा (सम्पादक-'श्वेताम्बर जैन' आगरा) जैसे गुणज्ञ सज्जनने कराया है। मैं पुनरुक्ति करना नही चाहता। 'प्राग्वाट इतिहास' के बाद यह 'पल्लीवाल जैन इतिहास' लिख कर लेखक ने सचमुच समाज को अनुगृहीत किया है, अपने को 'अमर' बना दिया है।

पल्लीवाल-जैन-समाज कैसा सद्‌गुणी, सत्कर्तव्य-परायण, प्रशंसनीय था? और है-उसका इतिहास लिखना, प्रामाणिक परिचय, या दिग् दर्शन कराना सहज बात नहीं है। प्राचीन संस्कृत प्राकृत ग्रन्थों में ताड़पत्रीय और कागज पुस्तकों में, प्रशस्तियां; तथा जैन-प्रतिमा-लेखों में मिलती हैं। अस्त-व्यस्त इधर-उधर बिखरी हुई साधन-सामग्री को ढूंढ़ कर, समझ कर, व्यवस्थित संकलित करना, प्रामाणिक इतिहास की रचना करना बहुत परिश्रम-साध्य अत्यन्त गहन कठिन कर्तव्य है। कर्तव्य-निष्ठ परिश्रमशील विचक्षण बुद्धिशाली सद्‌गत लोढाजी यह कर्तव्य यथामति यथाशक्ति बजा कर स्वर्ग सिधार गये। आशा है, इस इतिहास से समाज को शुभ प्रेरणा मिलेगी। अपने कीर्तिशाली संस्मरणीय पूर्वजों कैसे सच्चरित्र, सद्‌गुणी, प्रतिष्ठित सुशिक्षित सज्जन नररत्न उच्च संस्कारी नागरिक थे और समयोचित कर्तव्य

बजाने वाले थे, समाज देश हित करने वाले, परोपकार परायण विवेकी, धार्मिक अध्यात्मिक प्रवृत्ति करने वाले थे? महिलाएँ भी कैसी सुशील सच्चरित्र उदार धर्म परायण प्रेरणा-मूर्ति थी? इसका खयाल इतिहास पढ़ने से हो सकता है।

वर्तमान युग का वातावरण कुछ विचित्र है—कई पाश्चात्य-संस्कृति मुग्ध राष्ट्रवाद की धुन में जात-पांत का भेद मिटाकर, धर्म अधर्म का भी विचार छुड़ाकर, समझ में नहीं आता, मानवों को क्या पशु-प्राय बनाना चाहते हैं? हिंसा को उत्तेजन देकर अहिंसा को मिटा देना चाहते हैं? इस तरह आर्य संस्कृति, सभ्यता, नीति-रीति-आचार-विचार को दूर कर अनीति, दुराचार, अनार्य संस्कार फैलाना बढ़ाना चाहते हैं। प्राचीन ज्ञाति-समाज-संगठन मिटाकर, भिन्न भिन्न वर्णों-जातियों की एकता का विनाश कर विचित्र समाज की रचना का प्रचार, प्रयत्न कर रहे हैं। यह कहां तक ठीक है? गंभीरता से विचारने योग्य है। ऐसे समय में, ऐसा ज्ञाति धर्म संवद्ध इतिहास कई विरुद्ध विचार मान्यता वाल को पसन्द न भी आवे उसका उपाय नहीं है।

जैसे विशाल देश का संरक्षण उन्नति-प्रगति-योग-क्षेम भिन्न भिन्न प्रदेश-प्रान्त आदि की सुचारू व्यवस्था द्वारा होता है, इस तरह मानव समूह का संयम-नियमन, सदाचार-संस्करण, भिन्न भिन्न वर्तुल समुदाय-संगठन द्वारा व्यवस्थित किया जा सकता है। 'समान-शील व्यसनेषु सख्यम्' अर्थात् समान आचार-विचार वालों में मैत्री संभवित है। विरुद्ध आचार-विचार वालों में मेल होना मुश्किल है। एक अहिंसक हो, और दूसरा हिंसक, एक सात्त्विक आहार करने वाला, और दूसरा मांसाहार आदि अभक्ष्य भक्षण करने वाला, तामसी पदार्थ सेवन करने वाला, दारू आदि अपेय पान करने वाला हो, ऐसे ही एक व्यक्ति धर्म-निष्ठ हो, और दूसरी व्यक्ति धर्म से नफरत करने वाली, अधर्म को

उत्तेजन देने वाली हो, एक व्यक्ति आस्तिक हो, देव, गुरूआदि को मानने वाली हो, और दूसरी नास्तिक, देव, गुरू, मन्दिर, पूजन आदि से नफरत करने वाली हो, एक व्यक्ति मूर्ति का मान-सन्मान पूजन करने वाली हो, और दूसरी मूर्ति का द्वेष-तिरस्कार करने वाली हो। उन दोनों का मेल किस तरह बैठ सकता है ? विलक्षण चक्रों से संसार रथ गृहस्थाश्रम यथा योग्य कैसे चल सके ? यह सब विचार दीर्घ दृष्टि से लक्ष्य में रखकर पूर्वाचार्यों ने समाज-हित, समाज-संगठन के लिए फरमाया कि—'कुल-शील-समैः सार्धं कृतोद्वाहोऽन्यगोत्रजैः।' अर्थात् जिनका कुल और शील (सदाचरण) समान हो, और जो भिन्न गोत्र में उत्पन्न हुए हों (अर्थात् पीढ़ी-सम्बन्ध से बहिन, भाई न होते हों) उनके साथ विवाह करने वाला सद्-गृहस्थ गृहस्थ-धर्म पालने के लिए योग्य होता है—धर्म को निर्विघ्न पाल सकता है। ऐसे दम्पती-युगल सुख-शांतिमय उन्नत जीवन पसार करते हैं, दूसरों के लिए आदर्श बन सकते हैं, सद्गुणी संस्कारी, धर्म-परायण सन्तति-प्रजा परिवार को प्रकट करते हैं; जो समाज के, देशके, धर्मके, अभ्युदयके लिए, अभ्युत्थान के लिए समर्थ हो सके। विशुद्ध ज्ञाति-परम्परा से देश को विशुद्धता का कल्याण लाभ है। सारे जगत का या देश का उद्धार का ठेका कोई नहीं ले सकता। जैसे पंचों द्वारा प्रत्येक ग्राम की रक्षा व्यवस्था की जाती है, इस तरह भिन्न भिन्न जाति पंच मंडल, अपने अपने समुदाय की रक्षा व्यवस्था उन्नति प्रगति कर सकता है, जो परस्पर सुख दुःख में सम सुख दुखः भागी बनता है।

इस दृष्टि से विचारा जाय तो यह इतिहास उपयोगी प्रतीत होगा। पल्लीवाल जैन समाज जागृत और उत्साही मालूम होता है। श्रीयुत नन्दनलालजी जैसे ज्ञाति-नन्दन श्रीमान् सज्जन उसमें है कि अपने जाति समाज के प्राचीन अर्वाचीन इतिहास लिखने के लिए लेखक को प्रोत्साहित कर सके। इतिहास प्रेमी श्रीमान् धीमान् अगरचन्दजी

नाहटा जिनका परिचय, प्रतिकृति साथ इस पुस्तक में [पृ० १७९ से १८५ तक] पाठक पढ़ेंगे, उनका भी सहकार इसमें शामिल है।

सद्‌गत दौलतसिंहजी, 'प्राग्वाट इतिहास' के लेखन समय से हमारे परिचित मित्र रहे, उनके सुपुत्र फतहसिंह कीं तर्फ से, इस कार्य के लिए दो महीने पहिले दो शब्द (भूमिका) लिख देने के लिए सूचना आई, श्री नन्दनलालजी का भी प्रेरणा पत्र आया, मैं अन्यान्य कार्य में व्यग्र था, मेरा 'ऐतिहासिक लेख संग्रह' भी अभी प्रकाशित होरहा है। और मैं हिन्दी में कम लिखता हूँ, तो भी कुछ लिखने के लिए अन्तरात्मा ने प्रेरणा की। इसमेंलेखक ने विषय क्रम से प्रकरण वार परिश्रम से लिखा है। पल्ली (पाली) स्थान की प्राचीनता, और पल्लीवाल वंश की प्रशस्तियां के विषय में मैं आगे कुछ निवेदन करना चाहता हूँ। मेरा अभिप्राय है कि विक्रम की बारहवीं शताब्दी से पन्द्रहवी शताब्दी तक पल्लीवाल जाति वंश प्रायः श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन रहा। पीछे कई कारणों से भिन्न २ सम्प्रदाय मानने लगा हो। श्रीमाल, प्राग्वाट (पोरवाड़—पोरवाल) ओसवाल सज्जनों की तरह पल्लीवाल सज्जनों को भी उनके कई कुल कुटुम्वों को व्यापार व्यवसाय वृत्ति, निर्वाह आदि की अनुकूलता से भिन्न भिन्न समय में, भिन्न भिन्न स्थानों में इधर उधर दूर दूर देश विदेश में निवास करना पड़ा है। उन्होंने अपनी दक्षता से, सज्जनता से वहां वहां अपना संगठन कर लिया मालूम होता है। पल्लीवाल जैन समाज, पूर्वजों के सन्मार्ग पर चलकर, एकता से अपना उत्कर्ष सिद्ध करे यही शुभेच्छा है।

पल्ली (पाली) की प्राचीनता

विक्रम की दसवीं शताब्दी मे पल्ली पर अग्नि का उपद्रव

वि०संवत् ६१८ चैत्र शु० २ का एक प्राकृत शिलालेख, जो घटियाला (जोधपुर मारवाड़) से प्राप्त हुआ है, जिसमें प्रतिहारवंशी राजा कक्कुक के प्रशस्त कार्यों का उल्लेख है, उसमें जिनदेवका दुरित विनाशक, सुख जनक भवन का निर्माण समर्पण जनानुराग, कीर्ति स्तम्भों के साथ सूचन है कि "उसने विषम प्रसंग में गिरि ज्वाला से प्रज्वलित पल्ली (पाली) मे गोधन आदि ग्रहण कर रक्षा की थी, और भूमि को नीलोत्पल आदि की सुगन्ध से सुगंधी, तथा आम, महुडे और ईख के वृक्षों से मधुर रमणीय बनाई थी।"—यह शिलालेख, जर्नल रोयल एशियाटिक सोसायटी' सन् १८९५ में पृ० ५१६ से ५१८ में मुंशी देवीप्रसादजी के 'मारवाड़ के प्राचीन लेख' में तथा सद्गत बाबूजी पूरनचंदजी नाहर के 'जैन लेख संग्रह' (खण्ड १ पृ० २५६ से २६१) में प्रकाशित हुआ है, तथा कण्ह (कृष्ण) मुनि नामक लेख (जैन सत्यप्रकाश वर्ष ७ दीपोत्सवी अंक) में मैंने दर्शाया है उसमें निर्दिष्ट पल्ली प्रस्तुत पाली नगरी समझनी चाहिए। जिस प्राचीन स्थान से पल्लीवाल (पालीवाल) वैश्यों, ब्राह्मणों के ज्ञाति और श्वे० जैन मुनियों के पल्लीवाल गच्छ की प्रसिद्ध हुई है। विक्रम की१० वीं शताब्दी में इसके ऊपर अग्नि प्रकोप जैसी विषम आपत्ति आई थी उस समय सद्गुणी राजा कक्कुकनेवहाँ गोधन आदि की समयोचित रक्षा की थी।

वि० सं० १३८९ में जिनप्रभसूरिजी ने विविध तीर्थकल्प (सिंधी जैन ग्रन्थमाला ग्र० १०, पृ० ८६) में तीर्थनामधेय संग्रहकल्प में सूचित किया है अनेक प्राचीन स्थानों में वीर का तीर्थ स्थान था, उनमें 'पल्लयां' शब्द से इस पल्ली (पाली) का भी स्मरण है,। वहाँ भी भगवान् महावीर का प्राचीन जैनमन्दिर था। सिद्धराज जयसिंह के मित्र खंडिल्लगच्छ के विजयसिंहसूरि शिष्य वीराचार्य पाटण (गुजरात) से विद्या—बलसे आकाश मार्ग द्वारा पल्ली पुरी में पहुँचे थे। यह घटना

पल्लीवास (ल) ब्राह्मणों ने पत्तनपुर में महाराज जयसिंह को सूचित की थी। ऐसा उल्लेख--वि० सं० १३३४ के प्रभाचन्द्रसूरि के सं० प्रभावक चरित्र [वीरा चार्य चरित्र श्लो० १६--१९] में मिलता है।

सिद्धराज और कुमारपाल के महामात्य प्राग्वाटवंशीय आनन्द पुत्र पृथ्वीपाल ने वि० सं० १२०१ ज्येष्ठ वदी ६ रविवार को अपने श्रेय के लिए कराई श्री विमलनाथ और श्री अनन्तनाथ देव जिन युगल मूर्तियाँ पल्लिका (पाली) के महावीर चैत्य में अर्पण की थीं।

उसका लेख श्री नाहर जैन लेख संग्रह (भा० १, लें० ८१४, ८१५) तथा श्री जिन विजयजी प्रा० जैन लेखसंग्रह भा० २ ले० ३८१) में दर्शाया है। श्रीगुजरातनो प्राचीन मंत्रि वंश नामक मेरा लेख ओरियन्टल कॉन्फरेन्स ७ वां अधिवेशन निबन्ध संग्रह में सन् १९३५ बड़ौदा से प्रकाशित हुआ, उसमें सूचित किया हैं।

जैसलमेर किले के ग्रन्थ भंडार में रही हुई पंचाशक वृत्ति के ताड पत्रीय पुस्तक के अन्त में सं० दो पद्यों में उल्लेख हैं कि 'विक्रम संवत १२०७ में पल्ली-भंग के समय उस त्रुटित पुस्तक को ग्रहण किया था, पीछे श्री जिनदत्तसूरिजी के शिष्य स्थिर चन्द्र गणि ने अपने कर्म-क्षयार्थ अजय मेरु दुर्ग में उसके गत भाग को लिखा था।

सुप्रसिद्ध आचार्य श्री हेमचन्द्रजी ने गुर्जरेश्वर महाराजा कुमार पाल की कीर्ति पल्ली-देश (पाली प्रदेश) में भ्रमण करती सूचित की है। उनकी देशी नाम माला (वर्ग ६, गा० १३५ वृत्ति में इस भाव का ११८ वाँ पद्य हैं।

"अमुरिअ तेअ---मुलासिय !,
जयसिरि---वीवाह ! मुक्कया तुज्झ
मुरइ व्व भमइ कित्ती,
मुआइणी किं ण पल्लि देसे त्ति !"

भावार्थ :—जिसका तेज-स्फुलिंग त्रुटित नहीं हुआ है, ऐसे [हे महाराजा कुमारपाल !] अन्य बन्धुओं को छोड़ कर जयश्री के साथ विवाह करने वाले [हे महाराज] तुम्हारी कीर्ति, असती स्त्री-डुम्बीकी तरह पल्लि देश (पाली के देश) में भी क्या भ्रमण नहीं करती है ?

महाराजा कुमारपाल ने अपने बाहु-पराक्रम से रणांगण में शाकंभरी (सांभर) के राजा आन्न (अर्णोराज) पर विजय प्राप्त किया था, इसका इसमें संस्मरण है।

जैसलमेर भण्डार ग्रन्थ सूची (पृ० ६ गा० ओ० सिरीझ नं० २१) में हमने दर्शाया है।

वि० सं० १२१५ की शरद् ऋतु में, इस पल्ली (पाली) में साहार सेठ के स्थान में निवास कर जिनचन्द्रसूरि के शिष्य विजयसिंहसूरि ने उमास्वाति वाचक के जम्बूद्वीप समास की विनेयजनहिता टीका रची थी। [देखो तत्वार्थ सूत्र का परिशिष्ट, कलकत्ता आवृत्ति]

विक्रम की १२—१५ वीं शताब्दी की पल्लीवाल वंश की प्रशस्तियां

आचारांग सूत्र की ताडपत्रीय पुस्तिका, जो पट्टन (गुजरात) संघवीपाडा के ग्रन्थ-भंडार में विद्यमान है, उसके अन्त में पल्लीवाल वंश की तारीफ इस प्रकार है—

"उत्तुङ्गः सरलः सुवर्णरुचिरः शाखाविशालच्छविः
सच्छायो गुरु शैल लब्ध निलयः पर्वश्रियाऽलंकृतः ।
सद् वृत्तत्वयुतः सुपत्र गरिमा मुक्ताभिरामः शुचिः
पल्लीपाल इति प्रसिद्धमगमद् वंशः सुवंशोपमः ॥"

भावार्थ—पल्लीपाल-वाला वंश को इसमें सुन्दर वंश-वृक्ष की उपमा देकर, उसकी साथ तुलना की है। जैसे वंश-वृक्ष ऊंचा, सरल, सुवर्ण से मनोहर होता है, शाखाओं से विशाल शोभा-युक्त होता है, छाया वाला होता है, बड़े भारी शैल (पर्वत) के ऊपर स्थान प्राप्त करने वाला होता है, पर्व श्री से अलंकृत होता है सद् वृत्तपन से युक्त होता है, सुन्दर पत्रों से गौरव वाला होता है, मोतिओं से मनोहर और पवित्र होता है, इस तरह पल्लीवाल वंश भी ऊंचा है, सरल है, सुवर्ण से सुन्दर है, शाखाओं से विशाल कान्तिवाला, छाया वाला है, बड़े भारी पर्वत पर जिसने स्थान मन्दिर प्राप्त किया है, जो पर्व-लक्ष्मी से अलंकृत हैं, सदाचरण से युक्त है, सुन्दर पत्रों से गौरव वाला, मोतिओं से मनोहर और पवित्र होने से प्रसिद्धि को पाया है।

इस पल्लीवाल वंश में चन्द्र नामक यशस्वी सद्गृहस्थ श्वेताम्बर जैन हो गया, जिसने श्री पार्श्वजिनेश्वर का मन्दिर कराया था। उसकी पत्नी का नाम माइं, पुत्रों का नाम १ साभड, २ सामंत था। उनकी बहिन श्रीमती ने गुरोपदेश से संसार की असारता समझकर जयसिंहसूरि के पास दीक्षा ग्रहण की थी, उसकी बहिन शाँतूने विशाल आचारांग-सूत्र (निर्युक्ति के साथ) लिखवाकर श्रीमती गणिनी को दिया था, उसने वह पुस्तक व्याख्या के लिए श्री धर्मघोष सूरि को अर्पण किया था। ७ श्लोक वाली यह प्रशस्ति; पत्तनस्थ प्राच्य जैन भाण्डागारीय ग्रन्थ सूची (गा० ओ० सि० नं० ७६ पृ० १०८-१०९) में हमने दर्शाई है। इसका अवतरण, जैन पुस्तक-प्रशस्ति-संग्रह (पृ० ५५-५६ में हुआ है।

इसका जिकर स्व० लोढाजी ने इस इतिहास में पृ० ७१ में किया है। शायद वे पत्तन भा० ग्रन्थसूची को न देख सके।

"तन्वानं स्वकलाकलापमधिकं वर्यार्जवालंकृतं,
लक्ष्मीर्वंशनटीव यं श्रितवती प्रोङ्खद् गुणाध्यासितम्।
रङ्गान्नोत्तरणाभिलाषमकरोद् या (यो) वर्ण्यतामागता (तः),
पल्लीपाल इति प्रसिद्ध महिमा वंशोऽस्ति सोऽयं भुवि।"

भावार्थः—अपने अधिक कला-कलाप को विस्तारने वाले, श्रेष्ठ आर्जव-सरलता से अलंकृत, तथा श्रेष्ठ गुणों से विभूषित जिस वंश को लक्ष्मी, वंश-नटीकी तरह आश्रित होकर, रङ्ग से उतरने का अभिलाष नहीं करती है, ईससे जो वर्णन करने योग्य हुआ है—वैसा पृथ्वी में प्रसिद्ध महिमा वाला यह पल्लीवाल वंश हैं।

सुप्रसिद्ध त्रिषष्टिशलाका पुरुष-चरित (अजितनाथ से शीतलनाथ पर्यन्त पर्व २-३) की ताडपत्रीय प्रति, जो पट्टन (गुजरात) के संघवोपाडा के ग्रन्थ-भण्डार में विद्यमान है, उस पुस्तक के अन्त में २१ श्लोक वाली प्रशस्ति है जो पट्टन भंडार की ग्रन्थ-सूची (गा० ओ० सि० नं० ७६, पृ० १३८-१४०) में हमने दर्शाई है। उसका प्रथम श्लोक ऊपर दिखलाया है। वि० सम्वत् १३०३ उसमें स्पष्ट सूचित किया है।

उस वंश के सोही के वंशजो में मदनसुन्दरी और भाव सुन्दरी जैन श्वेताम्बर, साध्वियां हुई थीं, जिन्होंने कीर्तिश्री गणिनी की चरणाराधना की थी (उनकी शिष्याएँ बनी थीं।)

कुल प्रभ गुरु का विशुद्ध उपदेश सुनकर, उस वंश के धर्म निष्ठ सद् गृहस्थ श्रीपाल ने माता-पिता के सुकृत के लिए उपर्युक्त पुस्तक लिखवाया था, और विक्रम संवत् १३०३ में उस कुल प्रभसूरिके पट्ट-तिलक नरेश्वरसूरि से व्याख्यान कराया था। यह पुस्नक उस वर्ष में का० शु० १० के दिन भृगुकच्छ (भरुच) में ठ० सउचर ने लिखा था।

स्वर्गीय लोढाजी ने इस इतिहास में इसका जिक्र पृष्ठ ६७-६८ में किया है, लेकिन वहां जै० पु० प्र० सं० प्र० ११ पृष्ठ १४ सूचित किया है, मालूम होता है पट्टन भं० ग्रन्थ सूची मुख्य आधार-स्थल को वे न देख सके।

वि० संवत् १३२६ श्रा० व० २ सोम के दिन धवलक्कक (धोलका गुजरात) में, अर्जुनदेव महाराज के राज्य-काल में, महामात्य श्री मल्लदेव के समय में, स्तम्भ तीर्थ (खंभात) निवासी पल्लीवाल ज्ञातीय भण० लीलादेवी ने अपने श्रेयोऽर्थ महापुरुष-चरित्र पुस्तक (ताडपत्रीय) लिखाया था, जो वर्तमान में श्री विजयनेमिसूरिजी के शास्त्र-संग्रह-भण्डार अहमदाबाद में है। इसके मुख्य आधार से शीलांकाचार्य का यह प्राकृत ग्रन्थ चउप्पन्न महापुरुष-चरित्र हाल में प्राकृत ग्रन्थ परिषद् (प्राकृत टेक्स सोसायटी) ग्रन्थ ३ वाराणसी से प्रकाशित हुआ है। इसके पृ० ३३५ की टि० ६ में उपर्युक्त पुस्तक का अन्तिम उल्लेख दिखलाया है।

स्वर्गीय लोढाजी ने इस इतिहास के पृ० ७२ में, सिर्फ वर्धमान स्वामी चरित्र की प्रति का निर्देश किया है। वह उपर्युक्त पुस्तक समझना चाहिए।

"पुण्यागण्य गुणान्वितोऽतिविततस्तुंगः सदा मंजुलः,
छाया-श्लेषयुतः सुवर्णकलितः शाखा—प्रशाखाकुलः।
पल्लीपाल इति प्रभूत महिमा ख्यातः क्षितौ विद्यते,
वंशो वंश इवोच्चकैः क्षितिभृतो मूर्ध्नोपरिष्ठात स्थितः॥

भावार्थ—पल्लीपाल (वाल) वंश, वंश (वृक्ष) की तरह, पुण्य से अगणित गुणों से युक्त है, अति विस्तृत, ऊंचा, और सदा मनोहर है, छाया-संयोग से युक्त, सुवर्ण से शोभता, तथा शाखा-प्रशाखाओं से

विभूषित, बहुत महिमा वाला, पृथ्वी में प्रख्यात, उच्चता से, पर्वतों और राजाओं के मस्तक ऊपर रहा हुआ (राजमान्य) विद्यमान है।

पट्टन (गुजरात) संघवीपाड़ा के जैन ग्रन्थ-भंडार में नं० २६४ सार्धशतकवृत्ति ताड़पत्रीय प्रति के अन्त में वीर जिनेन्द्र के मङ्गल श्लोक के बाद वीरपुर नामक नगर के वर्णन के बाद उपर्युक्त श्लोक है। इस पल्लीवाल वंश में ठक्कुर धंध नामक माननीय श्रावक और उसकी पत्नी रासलदेवी का गुण-वर्णन अपूर्ण है। यह पुस्तिका इस वंश के सज्जनों ने लिखा कर समर्पण की मालूम होती है। यह प्रशस्ति पट्टन भ० ग्रंथ सूची (गा० ओ० सि० नं० ७६ पृष्ठ १६३) में हमने दर्शाया है।

स्वर्गीय लोढाजी ने इस इतिहास के पृष्ठ ७१ में इसका जिकर किया है, लेकिन वहां आधार-स्थान जै० पु० प्र० सं० १०३ पृ० ९४ दर्शाया है, पट्टन भं० ग्रन्थ सूची न देख सके।

> पल्लीवाल इति ख्यातो, वंशः पर्वोदितोदितः ।
> सोऽस्ति स्वस्तिकरो धात्र्यां, यत्र कीर्तिर्व्यजायत ॥

भावार्थः—पल्लीवाल नाम से प्रख्यात यह वंश है, जो पर्वों से उदित उदय वाला है, पृथ्वी में स्वस्ति-कल्याण करने वाला है, जिस वंश में कीर्ति प्रकट हुई है।

पट्टन (गुजरात) के संघवी पाडा के जैन ग्रन्थ भण्डार में नं० ६० में रही हुई देवेन्द्रसूरि-कृति उपमिति भव प्रपंचा कथा-सारोद्धार (श्लोक बद्ध) के अन्त में १६ श्लोक वाली विस्तृत प्रशस्ति है, उसका दूसरा श्लोक ऊपर दर्शाया है। इस वंश के श्रेष्ठी वीकल की पत्नी रत्नदेवी थी। उनकी शीलवती पुत्री सूल्हणि सुश्राविका थी, जो वज्रसिंह की प्रियतमा थी। जयदेवसूरि की भक्त उस श्राविका ने अपनी सासू

पातू के श्रेयोऽर्थ वह पुस्तिका लिखवाई थी। पट्टन भं० ग्रन्थ सूची (गा० ओ० सि० नं० ७६, पृ० ५०-५१) में हमने दर्शाया है।

स्वर्गीय लोढाजी ने इस इतिहास में पृ० ६९-७० में इसका परिचय कराया है, वहां आधार-स्थान जै० पु० प्र० सं० ७० पृष्ठ ६८-६९ दिखलाया है। पूर्वोक्त पट्टन भण्डार-ग्रन्थ सूची को न देख सके।

सुप्रसिद्ध जिन प्रभसूरि ने वि० सं० १३८९ में हम्मीर मोहम्मद (तुगलक) के राज्य-काल में योगिनी पत्तन (दिल्ली) में कल्पप्रदीप (विविध तीर्थ कल्प) ग्रन्थ की रचना पूर्ण की थी। उसमें प्राकृत नासिक्यपुर कल्प में सूचित किया है कि—

"नासिक्यपुर में प्राचीन जैन प्रासाद था, उसको किसी अत्याचारी ने गिरा दिया है, ऐसा सुनकर पल्लीवाल वंश के विभूषण साह ईश्वर के पुत्र माणिक्य के सुपुत्र, नाऊ की कुक्षि रूप सरोवर के राज-हंस-समान परम श्रावक साह कुमारसिंह ने फिर नया प्रासाद (जैन मन्दिर) कराया। न्याय से आया हुआ अपना द्रव्य सफल किया, अपने आत्मा को संसार रूप समुद्र से उतारा। इस तरह अनेक उद्धार से सार रूप नासिक्क महातीर्थ का आराधन आज भी यात्रा महोत्सव करने से चारों दिशाओं से आकर के संघ करते हैं, कलिकाल के गर्व को विनष्ट करने वाले भगवंत के शासन की प्रभावना करते हैं।"

विशेष के लिए देखे 'विविध तीर्थ कल्प पृ० ५३-५४, सिंघी जैन ग्रन्थमाला ग्रन्थ १० तथा हमारा लिखित 'श्रीजिन प्रभसूरि अने सुल-तान महम्मद।'

संघवी पाडा पट्टन भंडार की ग्रन्थ सूची पृ० २५७-२५८ में पल्ली-वाल कुल की ३२ श्लोक वाली ऐतिहासिक प्रशस्ति हमने प्रकाशित कराई है, लेकिन उस समय, वह किस ग्रन्थ के अन्त में है, ज्ञात नहीं था। पीछे गवेषणा से ज्ञात हुआ कि :—

सं० १४४२ भाद्र० शु० २ सोम के दिन स्तंभ तीर्थ (खंभात) में लिखित पंचांशक-वृत्ति ग्रंथ-ताडपत्रीय पुस्तक के अन्त में है। उसके प्रारम्भ में ....(आभू श्रेष्ठी) नाम है, अन्त से सूचित होता है कि सोम-तिलक सूरीश्वर के पट्टन के ज्ञान भंडार की यह पुस्तिका थी।

उसके १८ वें श्लोक से ज्ञात होता है कि उस वंश के दानी श्रीमान् रत्नसिंह ने संघपति होकर संघ को विमलाचल आदि तीर्थों की यात्रा कराई थी। और [श्लोक २०-२१] सद्गुणी राज-मान्य सिंह ने वि०सं० १४२० में तपागच्छीय श्री जयानन्दसूरि और देव सुन्दरसूरिका सूरिपद-महोत्सव किया था।

सर्व कुटुम्बाधिपति इस सिंह के आदेश से तमालिनी (खंभात) में, धनाक और सहदेव ने संवत् १४४१ में स्तम्भनकाधिप (स्तम्भन-पार्श्वनाथ) के चैत्य में ज्ञान सागरसूरि (तपागच्छीय) का सूरिपद-महोत्सव किया था।

तथा सौवर्णिक श्रेष्ठ अन्य गृहस्थों ने वि० सं० १४४२ में कुल मंडन सूरि से गुणरत्नसूरि (तपागच्छीय) का सूरिपद-महोत्सव किया था।

इस प्रशस्ति में सौवर्णिक-श्रेष्ठ साल्हा-कुटुम्ब के गुण-वर्णन के साथ उसके स्वजनों के भी नाम दर्शाये हैं। इस साल्हा की सुशील, विशुद्ध बुद्धिशाली भार्या हीरादेवी जो सौवर्णिक-शिरोमणि लूंढा और लाखणदेवी की सुपुत्री थी, उसने शत्रुंजय वगैरह तीर्थों की यात्रा से पुण्योपार्जन किया था।

स्वर्गीय लोढाजी ने इस इतिहास के पृ० ७७ से ८१ तक इस कुल का परिचय, वंशवृक्ष के साथ कराया है लेकिन इसका आधार-स्थान जै० पु० प्र० सं० प्र० ४०, पृ० ४२, और प्र० सं० प्र० १०२ पृ० ६४ दर्शाया हैं। मालूम होता हैं वे, पट्टन भं० ग्रन्थ सूची न देख सके अस्तु

भूमिका, धारणा से अधिक विस्तृत हो गई है इससे यहां ही समाप्त कर देता हूँ। गवेषणा करने वाले संशोधक, सज्जन इससे अधिक इतिहास प्रकाश में लावें, और समाज का गौरव बढ़ावें। लेखक, प्रेरक, प्रकाशक आदि का परिश्रम सफल हो। शुभभूयात्।

सं० २०१८
फा० शु० २ गुरुवार

लालचन्द्र भगवान गांधी
(निवृत्त जैन पंडित-बड़ौदा राज्य)
बड़ी वाड़ी, रावपुरा बड़ौदा



पल्लीवाल जैन इतिहास

प्रभु-स्तुति

सोमं स्वयंभुवं बुद्धं, नरकांत करं गुरुम् ।
भास्वन्तं शंकरं श्रीदं, प्रणौमि प्रयतो जिनम् ॥

अर्थात—शान्ति के धारक और आल्हादकारी होने से जो साक्षात चन्द्र कहलाते हैं। बिना उपदेशक के स्वयं ज्ञान प्राप्त करने से जो स्वयंभू (ब्रह्मा) कहे जाते हैं। केवल ज्ञानी होने से जो बुद्ध कहलाते हैं। दूसरी कर्म प्रकृतियों के साथ नर्क नामक दैत्य को परास्त करने वाले होने से जो साक्षात विष्णु कहे जाते हैं। अलौकिक बुद्धिमान होने से जो बृहस्पति संभाषित होते हैं। केवल ज्ञान से लोकालोक को प्रकाशित करने के कारण जो सूर्य कहे जाते हैं। आसन्न भव्य को मुक्ति सुख प्रदान करने वाले होने से जो शंकर कहलाते हैं। स्वर्ग और मोक्ष की लक्ष्मी के देने वाले होने से जो कुबेर कहलाते हैं। ऐसे श्री जिनेन्द्रदेव की मैं मन वचन काया से पवित्र होकर स्तुति करता हूं।

सरस्वती-वन्दना

वाचस्पत्यादयो देवाः, स्व समीहित सिद्धये ।
यां नमन्ति सदा भक्त्या, तां बंदे हंसवाहिनीम् ॥

अर्थात—बृहस्पति आदि देवता भी इच्छित कार्य की सिद्धि के लिए भक्तिपूर्वक जिसको नमन करते हैं। उस हंसवाहिनी देवी की मैं वन्दना करता हूं।

भूमिका, धारणा से अधिक विस्तृत हो गई है इससे यहां ही समाप्त कर देता हूँ। गवेषणा करने वाले संशोधक, सज्जन इससे अधिक इतिहास प्रकाश में लावें, और समाज का गौरब बढ़ावें। लेखक, प्रेरक, प्रकाशक आदि का परिश्रम सफल हो। शुभभूयात्।

सं० २०१८]
फा० शु० २ गुरुवार]

लालचन्द्र भगवान गांधी
(निवृत्त जैन पंडित-बड़ौदा राज्य)
बड़ी वाड़ी, रावपुरा बड़ौदा



हीं है; परन्तु इसके इतिहास एवं पुरातत्व सम्बंधी प्राचीन प्रमाण भी उपलब्ध होते हैं और राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार श्री ओझाजी, टॉड साहब आदि तथा वर्त्तमान राजस्थानी इतिहासज्ञ भी इन तीनों में घनिष्ट संबंध रहा हुआ बतलाते हैं। पाली में प्राप्त प्राचीनतम लेख वि० सं० ११४४, ११५१ और १२०१ में पाली पल्लिकीय शब्दों का प्रयोग इन तीनों में प्राचीनतम संबंध को प्रगट करने में पूर्व सक्षम है। अधिक ऊहा पोह की आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती।

कन्नौज के अंतिम महाराज राठौड़ या गहडवाल जयचंद के मुहम्मद गोरी के हाथों अन्त में परास्त होगए। कन्नौज का साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया। वहाँ से कई राठौड़ कुल और अन्य प्रतिष्ठित कुल भारत के अन्य भागों में चले गये और जिसको जैसा अवसर प्राप्त हुआ उसने अपना वैसा-वैसा चलन स्वीकार किया। कई कुल वीरो ने छोटे-छोटे राज्य भी स्थापित किये। ऐसे पुरुषों में जोधपुर के राठौर राजवंश का प्रथम पुरुष रावसीहा था। रावसीहाने आकर पाली में अपना राज्य स्थापित किया। इसके संबंध में भांति-भांति की कई किवदन्तियाँ प्रचलित हैं; परन्तु यहाँ राठौर राज्य की स्थापना का विषय प्रस्तुत इतिहास का अंग नहीं हैं। मात्र इतना ही लिख देना प्रर्याप्त है कि पाली कें समृद्ध व्यापारी श्रेष्ठि

(१) गौरी शंकर ओझा कृत राजस्थान के इतिहास में जोधपुर राज्य का इतिहास।

(२) टॉड राजस्थान में पाली सम्बंधी विवरण।

पाली और पल्लीवाल

जोधपुर—मारवाड़—जंकशन— रेल्वे लाइन पर पाली एक प्रसिद्ध व्यापारिक नगर है। राजस्थान के प्रसिद्ध व्यापारिक कला-कौशल वाले नगरों में पाली की आज भी गणना है। ठीक एक सहस्र वर्ष पूर्व भी पाली राजस्थान के प्रसिद्ध व्यापारिक नगरों में प्रसिद्ध था और मारवाड़ के भीनमाल, जाबालिपुर और ओसियाँ जैसे प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगरों की समृद्धता एवं सम्पन्नता में इससे स्पर्द्धा थी। इतना ही नहीं पाली का व्यापार अरब अफ्रीका, ईरान, अफगानिस्तान, तुर्क,यूरोप, तिब्बत आदि पश्चिमी-उत्तरीय प्रदेशों के संग भी बड़े पैमाने पर चलता था और राजस्थान, मालवा, दोआब, मध्य-प्रदेश, गुर्जर भूमियों में पाली के व्यापारी भारी प्रतिष्ठा के साथ व्यापार विनिमय करते थे। जालोर के जालोरी, श्रीमालपुर के श्रीमाली प्राग्वाट देशीय प्राग्वाट पोरवाल उपकेशपुर ओसियाँ के ओसवाल, बघेरा के बघेर-वाल, मेड़ता के मेड़तवाल, नागौर के नागौरी, जैसे अन्य स्थानों एवं भिन्न प्रान्तों एवं विदेशों में, स्थानो के नामों से संबोधित किये जाते थे; पाली के व्यापारी अथवा निवासी भी पालीवाल पल्लीवाल, पल्लकीय विशेषणों से पुकारे जाते थे।

पाली नगर का पल्लीवाल गच्छ और पल्लीवाल जाति का परस्पर संबंध 'पाली' शब्द की समानता पर तो ध्वनित होता

हीं है; परन्तु इसके इतिहास एवं पुरातत्व सम्बंधी प्राचीन प्रमाण भी उपलब्ध होते हैं और राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार श्री ओझाजी, टॉड साहब आदि तथा वर्त्तमान राजस्थानी इतिहासज्ञ भी इन तीनों में घनिष्ट संबंध रहा हुआ बतलाते हैं। पाली में प्राप्त प्राचीनतम लेख वि० सं० ११४४, ११५१ और १२०१ में पाली पल्लिकीय शब्दों का प्रयोग इन तीनों में प्राचीनतम संबंध को प्रगट करने में पूर्व सक्षम है। अधिक ऊहा पोह की आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती।

कन्नौज के अंतिम महाराज राठौड़ या गहडवाल जयचंद के मुहम्मद गोरी के हाथों अन्त में परास्त होगए। कन्नौज का साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया। वहाँ से कई राठौड़ कुल और अन्य प्रतिष्ठित कुल भारत के अन्य भागों में चले गये और जिसको जैसा अवसर प्राप्त हुआ उसने अपना वैसा-वैसा चलन स्वीकार किया। कई कुल वीरो ने छोटे-छोटे राज्य भी स्थापित किये। ऐसे पुरुषों में जोधपुर के राठौर राजवंश का प्रथम पुरुष रावसीहा था। रावसीहाने आकर पाली में अपना राज्य स्थापित किया। इसके संबंध में भांति-भांति की कई किवदन्तियाँ प्रचलित हैं; परन्तु यहाँ राठौर राज्य की स्थापना का विषय प्रस्तुत इतिहास का अंग नहीं हैं। मात्र इतना ही लिख देना पर्याप्त है कि पाली के समृद्ध व्यापारी श्रेष्ठि

(१) गौरी शंकर ओझा कृत राजस्थान के इतिहास में जोधपुर राज्य का इतिहास।

(२) टॉड राजस्थान में पाली सम्बंधी विवरण।

श्रीमंतों की सुरक्षा की नितान्त आवश्यकता थी। पाली उस समय समृद्ध नगरों में अग्रगण्य तो था; परन्तु राजधानी नगर नहीं था। पाली को राजा की उपस्थिति अत्यन्त आवश्यक थी। जाबालिपुर का राजा जाबालिपुर में रहता था और पाली धन व्यापार में जाबालिपुर से भी अधिक समृद्ध था। पाली के आस पास छोटे-छोटे जागीरदार भूमिपति बालेचा चौहान रहते थे और वे अवसर देखकर पाली को, पाली के व्यापार को, मार्ग में व्यापारयों को भांति-भांति की हानियाँ पहुँचाया करते थे। ठीक ऐसे ही विषम काल में रावसींहा अपने कुछ वीरवर साथियों के साथ इधर पाली होकर जा रहे थे। पाली निवासी प्रतिष्ठित पुरुषों ने रावसीहा को सर्व प्रकार योग्य वीर न्यायी समझ कर पाली में अपना राज्य स्थापित करने की प्रार्थना की। रावसीहा इस अवसर की शोध में तो थे ही। इस प्रकार उन्होंने सहज ही पाली में अपना राज्य स्थापित किया। राव सींहा अपने अन्तिम समय तक पाली में ही राज्य करते रहे। जालौर परगना के बीठू ग्राम में वि० सं० १३३० का० कृ० १२ सोमवार का देवल शिला लेख रावसीहा की मृत्यु तिथि का प्राप्त हुआ है। बीठू पाली से १४ मील उत्तर पश्चिम में है।

पल्लीवाल कहे जाने वाले ब्राह्मण वैश्यों के अतिरिक्त बढई, छीपी, लोहार, स्वर्णकार आदि भी भारत के भिन्न-भिन्न भागों में

(१) ओझा कृत राजस्थान जोधपुर राज्य का इतिहास देखें।

बसे हुये पाये जाते हैं। इनमें पल्लीवाल ब्राह्मण और पल्लीवाल वैश्य तो पालीं के पीछे एक जाति के रूप में ही प्रतिष्ठित हो गये हैं। पाली में भी इन दोनों वर्गों में घनिष्ट सम्बंध यजमान पुरोहित रहने का प्रमाण मिलता है। जैसे श्रीमाली वैश्यों का श्रीमाली ब्राह्मणों के साथ सम्बंध रहा हुआ प्राप्त होता है ठीक उसी भांति का पल्लीवाल वैश्य और ब्राह्मणों में सम्बंध था।

पाली की प्राचीनता का प्राचीनतम प्रमाण पाली नगर के उत्तर पूर्व में बना हुआ पातालेश्वर महादेव का विक्रमीय ९वीं शताब्दी का बना हुआ मंदिर है। इस प्रमाण से यह कहा जासकता है कि पाली की प्राचीनता नवीं शताब्दी से भीं पूर्व मानी जा सकती है। आज इतना प्राचीन पाली, उतना बड़ा नगर भले न भी रह गया हो; परन्तु फिर भी वह राजस्थान का प्रसिद्ध व्यापारिक नगर तो आज भी हैं और वहाँ पल्लीवाल ब्राह्मणों के लगभग ५०० घर आज भी वसते हैं। एक मोहल्ला आज भी पल्लीवाल मोहल्ला के नाम से वहाँ कीर्तित है। पाली के पल्लीवाल ब्राह्मण और वैश्य दोनों बड़े-बड़े व्यापारी वर्ग रहे हैं। इनकी माण्डवी और सूरत जैसे व्यापारी नगरों में कोठियाँ और दुकाने थीं। ये दूर-दूर तक व्यापार करने जाया आया करते थे। खम्भात जैसे सुदूर बन्दर नगर के जैन मन्दिर और ज्ञान भण्डारों में पल्लीवाल श्वेताम्बर जैन श्रेष्ठियों द्वारा लिखवाई हुई कई ग्रंथ प्रतियाँ और प्रतिष्ठित प्रतिमायें सिद्ध कर रहीं हैं कि विक्रम की तेरहवीं चौदहवीं शताब्दी तक तो श्वेताम्बर पल्लीवाल कच्छ, काठिया

वाड़, सौराष्ट्र; उत्तर गुर्जर-पत्तन के प्रदेशों में सर्वत्र फैल चुके थे। प्रस्तुत इतिहास में वर्णित कई पुरूष परिचयों से यह विश्वास किया जा सकता है। राजस्थान के जयपुर, भरतपुर, अलवर राज्यों में व उत्तर प्रदेशमें आगरा ग्वालियर मथुरा विभागों में भी पल्लीवाल वैश्य कुल विक्रम की १५ - १६ वीं शताब्दी पर्यन्त भरपूर फैल चुके थे। इसके प्रमाण में भी वर्त्तमान प्रस्तुत इस लघु इतिहास में कुछ प्रसंग आये हैं।

एक दन्त - कथा के अनुसार पाली को वहां के समस्त पल्लीवाल वैश्य और ब्राह्मणों को अकस्मात् भारी धर्म संकट आ उपस्थित होने पर छोड़ कर चला जाना पड़ा था। जाना हीं नहीं पड़ा; परन्तु साथ ही यह शपथ लेकर कि कोई भी पल्वीवाल अपने को अपनी पिता की सच्ची संतान मानने वाला, लौट कर पाली में नहीं बसेगा और वहाँ का अन्न-जल ग्रहण नहीं करेगा। हमको तो यह कथा पीछे से जोड़ दी गयी प्रतीत होती है ऐसी घटना पाली में विक्रमीय १७ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में घटी उल्लिखित मिलती है। किन्तु इस शताब्दी में तो पाली पर जोधपुर राठौड़ हिंदू राजवंश का शक्तिशाली यवनशासकों द्वारा पूर्ण सम्मानित राज्य था। हिन्दू राज्य में हिन्दुओं को कोई धर्म-संकट उत्पन्न होना-माना नहीं जा सकता और जो हिन्दू-राज्य यवन-सम्राटों द्वारा समर्थित हो, पूर्व सम्मानित हो तो वैसे हिन्दू राज्य में भी कोई धर्म-संकट उपस्थित हो जाना केवल गप्प हैं। इतिहास में भी कहीं ऐसा हुआ प्रतीत नहीं होता कि पाली पर

कभी भयंकर हिन्दू-विधर्मी शत्रुओं द्वारा कोई भयंकर आक्रमण हुआ हो, जिसके दुखद परिणाम में पाली के निवासियों को पाली सदैव के लिये त्याग कर जाना पड़ा हो। राव सीहा ने पाली में विक्रमीय तेरहवीं शताब्दी के अंतिम भाग में अपना प्रभुत्व भली भांति जमा लिया था और उसी राव सीहा के वंशजों के अधिकार में आज तक पाली चला आता रहा। इससे यह तो सिद्ध हो गया कि ऐसा भयंकर प्रकोप पाली पर विक्रम की तेरहवी शताब्दी पश्चात् तो नहीं हुआ। ऐसा प्रकोप इसके पूर्व हुआ तो वह भी मानने में नहीं आ सकता। गजनवी और गौरी के आक्रमणों के पूर्व तो कोई हिन्दू-बिरोधी शत्रु का आक्रमण राजस्थान में हुआ नहीं सुना अथवा पढ़ा गया। इन दोनों के आक्रमणों के स्थान, संवत्, मार्गों की आज इतिहासकारों ने पूरी-पूरी शोध कर के अपनी कई रचनायें इतिहास के क्षेत्र में प्रस्तुत कर दी हैं; परन्तु उनमें कहीं भी पाली पर आक्रमण करने का अथवा आक्रमण के प्रसंग में मार्ग में पाली को विध्वंसित कर देने का कोई वर्णन पढ़ने में अथवा जानने में नहीं आया कि अमुक सैनिक पदाधिकारी द्वारा किये गये अत्याचारों एवं धर्मभ्रष्ट व्यवहारों के कारण पल्लीवालों को पाली छोड़ कर जाना पड़ा हो। गौरी और उसके सैनिक अथवा उच्चाधिकारी सेना नायक अजमेर से आगे बढ़े ही नहीं। गुलाम वंश के शासन काल में जालौर पर, मंडोर पर इल्तुतमिस ने वि० सं० १२६५-६६ में आक्रमण अवश्य किया था; परन्तु पाली को भी नष्ट किया हो

ऐसा कोई विश्वासनीय उल्लेख अभी तक प्राप्त नहीं हुआ। और इस समय तो पाली राठौड़ वीरवर रावसीहा की सुरक्षा में आ चुका था। विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में राठौड़ राजकुल की राजधानी मंडोर से जोधपुर आ गई थी और उन्हीं वर्षों में जोधपुर राज्य का प्रबंध भी समुचित ढंग से सुदृढ़ बनाया गया था। इस राज्य सुव्यवस्था के स्थापना काल में यह संभव है कि पाली के ब्राह्मण कुल राजा से अप्रसन्न हो गये हों। पाली में वैसे तो एक लाख ब्राह्मण घरों का होना बताया जाता है; परन्तु यह संख्या मानने में नहीं आ सकती। हाँ इतना अवश्य सत्य है कि पल्लीवाल कहे जाने वाले आज के ब्राह्मण अधिक से अधिक संख्या में पाली में ही बसते थे और वैश्यों में भी उनमें से अति समृद्ध घर तो व्यापार करते थे और शेष कृषि का कार्य करते थे। पाली की समस्त कृषि योग्य भूमि पर ब्राह्मणों का एक छत्र अधिकार था। अन्य कृषक जातियों के अधिकार में कृषि योग्य भूमि नाम मात्र को थी। राज्याधिकारियों ने ब्राह्मण कुलों से भूमि लेकर अन्य कृषक लोगों को देने का प्रयत्न किया हो और उस पर ये ब्राह्मण कुल अप्रसन्न होकर संगठित रूप से पाली का त्याग करके चले गये हों। यह कारण इस लिये अधिक माना जा सकता है कि प्राचीन कालों में ब्राह्मण कृषि कर नहीं देते थे और प्रायः राजागण भी इनसे कोई कर नहीं लिया करते थे। पाली जैसे समृद्ध व्यवसायी नगर पर राज्य को व्यय अधिक करना पड़ता ही था और उसके बदले में अगर कुछ भी

आय न हो तो यह अधिक समय तक सहनीय भी नहीं हो सकता था। इस स्थिति में राज्य ने ब्राह्मण कुलों से जमीन ले-ले कर अन्य कर देने वाले कृषक कुलों को देना प्रारम्भ किया हो और इन कृषक ब्राह्मण कुलों ने अपने साथी वैश्य कुलों से इस हानि की पूर्त्ति में सहानुभूति चाही हो और वे भी उनके पोषण के लिये सदैव की रीति से अधिक सहाय करने को तैयार न हुए या बल्कि उल्टे उनके पोषण के भार को कम करने की सोचते रहे हों। इस प्रकार ब्राह्मण और राज्य तथा ब्राह्मण और वैश्यों में तनाव बढ़ गया हो और उस पर ये ब्राह्मण कुल संघ बांध कर निकल चले हों; यह मानना संभव है। पल्लीवाल वैश्यों के त्याग का तो कोई प्रश्न उठता ही नहीं। इतना अवश्य संभव माना जा सकता है कि ब्राह्मण कुलों की सहानिभूति में इन वैश्य कुलों में से अधिक अथवा न्यून ने पाली का त्याग किया हो और अन्यत्र जाकर बसे हों। यह संभव भी है, कारण कि वैश्यों और ब्राह्मणों में गाढ़ सम्बन्ध था। दोनों में यजमान और पुरोहित का सम्बंध था। ब्राह्मण कुलों की अधिक जिम्मेदारी इन वैश्य कुलों पर थी। ब्राह्मणों के कृषि दीन होने पर वह जिम्मेदारी मात्रा में और अधिक बढ़ने वाली थी। अतः दोनों ने पाली का त्याग करना और अन्य राज्य क्षेत्रों में जाकर निवास करना सामूहिक रुप से स्वीकार करके यह लोग पाली का त्याग करके चले गये हों। जो कुछ हो धर्म संकट जैसी तो कोई घटना नहीं हुई। राज्य प्रकोप तो फिर भी माना जा सकता है। परन्तु

वह भी भयंकर रूप से नहीं। मारवाड़ राज्य के उस समय के इस समृद्ध पाली नगर का अगर ऐसा भयंकर विध्वंश हुआ होता अथवा इस प्रकार पूर्णतः खाली कर दिया गया होता तो वैसी घटना का कुछ तो उल्लेख जोधपुर राज्य के इतिहास में मिलता; घटना बढ़ा चढ़ा कर कवित्तों में पिरोई गई है। पाली का त्याग करके ब्राह्मण दक्षिण पश्चिम दिशा में गये और वैश्य पूर्व उत्तर दिशा में; यह ठीक भी है। पल्लीवाल वैश्य आज भी मारवाड़ के उत्तर पूर्व में आये हुये अलवर, जयपुर, भरतपुर, ग्वालियर राज्यों तथा संयुक्त प्रान्त में अधिक बसे हुए हैं और पल्लीवाल ब्राह्मण उदयपुर, जैसलमेर, बीकानेर राज्यों और उनके निकट वर्त्ती भागों में। वैसे तो दोनों वर्गों के थोड़े-थोड़े घर तो राजस्थान की एवं मालवा, मध्य भारत की सर्वत्र भूमियों में पाए जाते हैं जो धीरे-धीरे व्यापार, कृषि धंधा आदि की दृष्टियों एवं अन्य सुविधाओं से आकर्षित हो-होकर जा बसे हैं। मेवाड़ में पल्लीवाल ब्राह्मणों को नन्दवाना बोहरा भी कहते हैं।

पाली और पल्लीवाल ज्ञाति का जैसा परस्पर सम्बंध पाया जाता है। वैसा ही पल्लीवाल पल्लिकीय गच्छ का भी इन दोनों के साथ पाया जाता है। पल्ली गच्छ की स्थापना पाली नगर में भगवान महावीर के पट्ट पर १७ वें आचार्य जसो (यशो) देव सूरि द्वारा सं ३२६ वैशाख शु० ५ को हुई। उक्त संवत् बीकानेर के बड़े उपाश्रय के ज्ञान भन्डार में प्राप्त एक अप्रकाशित पल्लीवाल गच्छ पट्टावली में जो श्री नाहटा जी को प्राप्त हुई थी और

जिसकी प्रतिलिपि श्री आत्मानन्द अर्ध शताब्दी ग्रंथ में श्री नाहटा जी ने अपने लेख 'पल्लीवाल गच्छ पट्टावली' में दी है, मिलता है। उक्त संवत् कहाँ तक ठीक है, प्रमाणों के अभाव में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। इतना अवश्य प्रमाणिक आधार पर लिखा जा सकता है कि पल्लीवाल गच्छ का अब तक प्राप्त प्राचीनतम मूर्त्ति लेख पाली में प्राप्त वि० सं० ११४४, ११५१ और १२०१ हैं। उक्त लेखों में पल्लिकीय प्रद्योतन सूरि का नाम स्पष्ट हैं। प्राचीनता और नाम साम्य के कारण पल्लीवाल गच्छ का पाली और पल्ली वाल ज्ञाति से गहरा संम्बंध माना जा सकता है, परन्तु यह मानना कि पल्लीवाल ज्ञाति पल्लीवाल गच्छीय आचार्य साधु मुनियों की ही अनुरागिनी अथवा इनको ही गुरु रूप से मानने वाली रही, ठीक नहीं। उपकेश गच्छाचार्य द्वारा प्रति बोधित उपकेश ओसवालों में जैसे कई गच्छ परम्परा की मान्यतायें प्रचलित हैं, ठीक उसी प्रकार पल्लीवाल गच्छ द्वारा प्रतिवोधित पल्लीवाल ज्ञाति में भी कई गच्छ मान्यतायें पायी जाती हैं और यह पल्लीवाल ज्ञातिय पुरुषों द्वारा प्रतिष्ठित मूर्त्ति मंदिर लेखों व प्रशस्तियो से भली भाँति स्पष्ट है। आदि में तीनों में घनिस्ट संबंध था, यह वस्तुतः मान्य है। पल्लीवाल गच्छाचार्यों द्वारा प्रतिष्ठित प्रतिमायें और मंदिर अन्य जैन ज्ञातियों जैसे ओसवाल, श्रीमाल आदि के प्रकरणों, वृत्तों में भी उल्लिखित प्राप्त होते हैं। अतः पल्लीवाल गच्छ और पल्लीवाल ज्ञाति में परस्पर आम्नाय रूढ़ता एवं व्यामोह का मानना अप्रमाणिक एवं अनुचित हैं।

पल्लीवाल ज्ञाति की उत्पत्ति
और
विकाश एवं निवास

वर्तमान में जितनी ज्ञातियां हैं उनके नाम प्रायः धंधा, स्थान प्रदेश, पुर-नगर-ग्राम के पीछे पड़े हुए ही अधिक मिलते हैं। जिन में वैश्य जातियों के नाम तो प्रायः उक्त प्रकार ही प्र.सद्धि में आये हैं। श्रीमालपुर के श्रीमाली, खंडेला के खण्डेलवाल, ओसियाँ के ओसवाल आदि बारह अथवा तेरह जातियों में प्रायः सर्वनाम ग्राम और प्रान्तों की प्रसिद्धि को लेकर ही चलते हैं। पाली से पल्लीज्ञाति की उत्पत्ति मानी जाती है। पाली और पल्लीवाल निबंध में इन दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में यथा प्राप्त एवं यथा संभव लिखा जा चुका है। कुछ विचारक जेन पल्लीवाल ज्ञाति और उसमें भी दिगम्बर पंडित पल्लीवाल ज्ञाति को समक्ष रखकर पाली से पल्लीवाल ज्ञाति का निकास अथवा उसकी उत्पत्ति स्वीकार करने को तैयार नही हैं। परन्तु वे इसकी उत्पत्ति अन्य ज्ञातियों के समान कहाँ से स्वीकार करते हैं? इसका उनके पास कोई उत्तर अथवा आधार नहीं है। ऐसी स्थिति में पाली से ही पल्लीवाल ज्ञाति उत्पन्न हुई मानना अधिक समीचीन है। श्वेताम्बर ग्रंथों में तो पाली और पल्लीवाल गच्छ

एवं जाति के प्रगाढ़ सम्बंध को दिखाने वाले कई प्रमाण उपलब्ध हैं जो प्रस्तुत इस लघु इतिहास में भी यत्र-तत्र आ गये है।

पाली की प्राचीनता के साथ २ पल्लीवाल ज्ञाति की 'पल्लीवाल' नाम से प्रसिद्धि होने की बात समानान्तर सिद्धनहीं की जा सकती। पाली नगर का नाम पाली क्यों पड़ा? कब पड़ा? आदि बातों को प्रमाणों से सिद्ध करना कठिन है 'पाली' का एक अर्थ तरल पदार्थ निकालने का, एक बर्तन विशेष जो पली, पला और पल्ली कहाते है। २ अर्थ है–ओढ़ने, विछाने अथवा अन्न, कपास की गांठ बांधने का चद्दर-पल्ली। ३-अर्थ है–पक्ष। ४अर्थ है–छोटा ग्राम। ५ अर्थ है–अनाज

नापने का एक प्रकार का पात्र जिसे जालोर, भीनमाल, जसवंतपुरा और साचोर के प्रगणों में पाली, पायली कहते हैं। आज भी वहां अन्न इसी पायली-माप से तो मापा जाता है जो मणों में पूरी उतरती है। चार पायली का एक माणा। चार माणा की एक सई और इसी प्रकार आगे भी माप है। अनुमानतः चार पायली अन्न का तोल लगभग साढ़े पांच सेर बंगाली बैठता है। यह पाली अथवा पायली माप ही पाली के नाम का कारण बना हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। पाली में और उसके समीपवर्ती भागों में अधिक बाजरी की कृषि होने के कारण इस तोल की ख्याति के पीछे 'पाली' नाम वर्तमान् पाली का पड़ गया हो; परन्तु यह भी अनुमान ही है। परन्तु इस में तनिक सत्यता का भास होता है। पाली में अन्न-प्रचुरता से होता था और उसको पाली अथवा

पायलो से मापा जाता था अतः पाली से मापने वाला अथवा पाली रखने वाला कृपक और व्यापारी पल्लीवाला-पालीवाला-पल्लीवाल-पल्लिकीय कहलाता हो और ऐसे पल्लीवालों की अधिक संख्या एवं वस्ती के पीछे वह नगर ही पाली नाम से विद्युति में आया हो। ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में मैं इन अनुमानों पर वल देकर नहीं कह सकता परन्तु पालो और पाली नामक माप की नाम साम्यता और पाली में पालो माप का प्राचीन समय से होता रहा प्रचार अवश्य विचारणीय हैं। जो कुछ हो—चाहे पल्ली—पालीवाल के पीछे नगर का नाम पाली पड़ा हो और चाहें नगर में पाली (माप) का प्रयोग होने से नगर का नाम पाली पड़ा हो और पाली-पल्ली माप का प्रयोग करने वाले कृषक, व्यापारी पल्लीवाल-पालीवाल कहाया हो—इन अटकलों से कोई विशेष प्रयोजन नहीं। विशेप संभव यही है कि यह छोटा ग्राम हो और पीछे बड़ा नगर वन गया हो।

प्रयोजन मात्र इतना ही है कि पाली से पल्लीवाल ज्ञाति का निकाश मानना अधिक संगत प्रतीत होता है और यह प्रसंग अनेक कवित्त, दन्त कथा, जन श्रुतियों में आता है और प्राचीन-इतिहास, पुरातत्त्व के प्राप्त प्रमाणों पर जव तक कि अन्य स्थल के पक्ष में प्रवल प्रमाण न मिल जांय, पाली ही पल्लीवाल ज्ञाति का उत्पत्ति-स्थान माना जाना चाहिए।

इसी पाली नगर से पल्लीवाल गच्छ की उत्पत्ति मानी जाती है। पल्लीवाल गच्छ की उत्पत्ति का अन्य स्थान अभी तक तो

किसी प्राचीन, अर्वाचीन विद्वान् ने नहीं सुझाया है। पाली को ही उसका उत्पत्ति-स्थान मान लिया गया है। पल्लीवाल गच्छ और पल्लीवाल ज्ञाति का मूल में प्रतिबोधक और प्रतिबोधित का सम्बंध रहा है। इस पर भी पल्लीवाल ज्ञाति का मूल उत्पत्ति-स्थान पाली ही ठहरता है। पल्लीवाल गच्छ विशुद्धतः श्वेताम्वर गच्छ है। पीछे से पल्लीवाल भिन्न गच्छ, सम्प्रदाय, मत अथवा वैष्णव धर्म अनुयायी बन गये हों, तो भी उनके पल्लीवाल नाम के प्रचलन में उससे कोई अन्तर नहीं पड़ सकता।

पल्लीवाल ज्ञाति की उत्पत्ति भी अन्य जैन वैश्य ज्ञातियों के साथ-साथ ही हुई मानी जा सकती है। वैसे तो ओसवाल, पोरवाल और श्रीमाल ज्ञातियों की उत्पत्ति संवन्धी कुछ उल्लेख भ० महावीर के निर्वाण के पश्चात् प्रथम शताव्दि में ही होना वतलाते हैं; परन्तु पल्लीवाल गच्छ पट्टावलि जो वीकानेर वड़े उपाश्रय के वृहत ज्ञान भण्डार में हस्त लिखित प्राप्त हुई है उनमें १७ वे पाट पर हुए श्री यशोदेव सूरि ने वि० संवत ३२६ वर्ष वैशाख सुदी ५ प्रल्हाद प्रतिवोधिता श्री पल्लीवाल गच्छ स्थापना लिखा है। जैन ज्ञातियों के अधिकतर जो लेख–प्रतिमा, ताम्र पत्र पुस्तकें प्राप्त हैं। वे प्राय: नवीं और दसवीं शताव्दी और अधिकतर उत्तरोत्तर शताव्दियों के साथ साथ संख्या में अधिकाधिक पाये जाते हैं। अतः उनका विश्रुति में आना विक्रम की आठवीं शताव्दी और उनके तदनन्तर माना जाता है। इसी प्रकार पल्लीवाल प्राचीनतम लेख वारहवीं शताव्दी का वि० सं० ११४४ पाली में प्राप्त हुआ है।

इस पर भी यह कहना ठीक नही है कि पल्लीवाल ज्ञाति की उत्पत्ति इसी के समीपवर्ती या इसी शताब्दी में ही हुई हो।

आधुनिक प्राय: समस्त जैन ज्ञातियों का उद्भव राजस्थान में हुआ है। राजस्थान से ये फिर व्यक्ति, कुल, संघ के रूप में व्यापार धंधा, राजकीय निमन्त्रणों पर और राज्य परवर्तन; दुष्काल, धर्म संकट एवं अर्थोपार्जन के कारणों पर स्थान परिवर्तित करती रही हैं और धीरे-धीरे विक्रम की बारहवीं शताब्दी तक समस्त जैन ज्ञातियाँ अपने मूल स्थान से छोटी बड़ी संख्या में निकल कर कच्छ, काठियावाड़, सौराष्ट, गुर्जर, मालवा, मध्य प्रदेश, संयुक्त प्रदेश बृज आदि भागों में भी पहुँच गई हैं। जिसके प्रचुर प्रमाण मूर्त्ति लेखों से, ग्रंथ प्रशस्तियों से एवं राज्यों के वर्णनों से ज्ञात होते हैं। पल्लो वाल ज्ञाति भी अन्य जैन ज्ञातियों की भाँति कच्छ, काठियावाड़, सौरास्ट्र और गुर्जर में बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी तक और ग्वालियर, जयपुर, भरतपुर, अलवर उदयपुर, कोटा, करौली बृज, आगरा आदि विभागों के ग्राम, नगरों में विक्रम की चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी पर्यन्त कुछ-कुछ संख्या में और सोलहवीं एवं सतरहवीं शताब्दी में भारी संख्या में उपरोक्त स्थानों में व्यापार धंधा के पीछे पहुंची और यत्र तत्र वस गई। इसकी पुष्टि में इस लघु इतिहास में वर्णित पल्लीवाल ज्ञातीय बंधुओं द्वारा उक्त स्थानों में विनिर्मित जैन मंदिर ग्रंथ प्रशस्तियां और प्रतिष्ठित मूर्त्तियां प्रमाणों के रूप में लिये जा सकते है।

पाली से निकल कर ज्यों-ज्यों कुल, व्यक्ति अथवा संघ अलग अलग प्रान्तों में, राज्यों में जा-जा कर बसते गये, त्यों-त्यों वहां के निवासियों के प्रभाव से सम्पर्क व्यवहार से, मत परिवर्त्तित करते गये और आज यह ज्ञाति जैन धर्म की सभी मत और सम्प्रदायों में ही विभाजित नहीं, वरन कुछ पल्लीवाल वैश्य वैश्णव भी हैं। जैसा अन्य प्रकरणों से सिद्ध होता है। इस जाति के प्राचीनतम उल्लेख श्वेताम्बरीय हैं और वे श्वेताम्बर ग्रंथों ज्ञान भण्डारों और मंदिरों में प्राप्त होते हैं।

मूल स्थान से सर्व प्रथम कौन निकला और कब निकला और वह कहां, जा कर बसा यह बतलाना अत्यन्त कठिन है। फिर भी जो कुछ प्राप्त हुआ है वह निम्नवत् है।

यह सुनिश्चत है कि पालीवाल ब्राह्मण कुल वहां निस्कर कृषि करते थे। इस प्रकार उनको राज्य को कोई कर नहीं देना पड़ता था। अतिरिक्त इसके पल्लीवाल वैश्यों के ऊपर भी उनका निर्वाह का कुछ भार था ही। राज्य ने ब्राह्मणों से कर लेने पर बल दिया और वैश्यों ने उसकी पूर्त्ति करना अस्वीकार किया, बल्कि सदैव की जिम्मेदारी को उलटा घटाना चाहा और इस पर 'सहजरूष्ट' होने वाले स्वभाव के ब्राह्मण अपने सदियों के निवास पालीं का एक दम त्याग करके चल पड़े। यह घटना वि० १७ वीं शताब्दी में हुई प्रतीत होती है। पल्लीवाल ब्राह्मण कुलों में पाली का त्याग करके निकल जाने की कथा उनके बच्चे बच्चे की जिह्वा पर है। इसी प्रसंग के घटना काल में पल्लीवाल

वैश्यों को पाली का त्याग करके चले जाने के लिये विवश होना पड़ा हो और वह यों। पल्लीवाल ब्राह्मण कृषक कुलों ने वैश्य कुलों से सहाय मांगी हो अथवा वृत्ति में वृद्धि करने की कही हो और वैश्य कुलों ने दोनों प्रस्ताव अस्वीकार किये और इससे यह तनाव बढ़ चला हो। इससे भी अधिक विश्वस्त कारण यह प्रतीत होता है कि वैश्य कुलों ने अपने ऊपर चले आते ब्राह्मण कुलों के आर्थिक भार को कम करना चाहा हो और ब्राह्मण कुलों ने वह स्वीकार न किया हो। ठीक इसी समस्या के निकट में राज्य ने ब्राह्मण कुलों से कृषि योग्य भूमि छीनना प्रारंभ किया हो और वैश्य कुल यह सोचकर कि ब्राह्मण कुलों को उलटा अब अधिक और देना पड़ेगा, न्यून करना दूर रहा। उक्त घटना काल के कुछ ही पूर्व अथवा उसी समय अधिक अथवा सम्पूर्ण समाज के साथ पाली का त्याग करके निकल चले हों। इस आशय की एक कहानी पल्लीवाल वैश्य कुलों में प्रचलित भी है और वह परिणाम से सत्य भी प्रतीत होती है।

उस समय पाली जैन पल्लीवाल वैश्यों में धनपति साह का प्रमुख होना राय राव की पोथियों में वर्णित किया गया है। यह कहाँ तक प्रमाणिक है इस पर विचार करते हैं तो वह यों सिद्ध होता है कि राय परशादीलाल और मोतीलाल, के उत्तराधिकारियों के पास में पल्लीवाल जाति की विवरण पोथियाँ हैं। उनकी पोथी में श्रेष्ठि तुलाराम ने श्री महावीर जी क्षेत्र के लिये पल्लीवाल जातीय ४५ पैंतालीस गोत्रों को निमंत्रित

कर के संघ निकाला था, का वर्णन है। श्री महावीर जी क्षेत्र की स्थापना विक्रमीय १६ उन्नीसवीं शताब्दी के सं० १८२६ के आस पास दीवान जोधराज ने की थी। अतः उक्त राय की पोथी १६ उन्नीसवीं शताब्दी की अथवा पश्चात् लिखी गई है। परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में लिखा जाने वाला विवरण निकट की और निकट तम की शताब्दियों का चाहे वह जनश्रुतियों, दन्त कथाओं पर ही क्यों न लिखा गया हो नाम, स्थान एवं कार्य-कारणों के उल्लेख में तो विश्वसनीय हो सकती है। इस दृष्टि से उक्त राय की उन्नीसवीं-वीसवीं शताब्दी में लिखी गई पुस्तक में अगर १७ सतरहवीं शताब्दी की कोई महत्वपूर्ण घटना प्रसंग वर्णित है तो वह विश्बास करने के योग्य ही समझा जा सकता है।

दूसरा धनपति साह का पल्लीवाल वैश्यों में विक्रमीय सतरहवीं शताब्दी में पाली का त्याग करने के कार्य को उठाना इस पर भी विश्वास योग्य ठहरता है कि उसी शताब्दी में पाली ब्राह्मणों ने पाली का त्याग किया था। दोनों में घनिष्ट एवं गाढ सम्बंध होने के कारण किसी तृतीय कारण से अथवा दोनों में उत्पन्न हुए कोई तनाव पर दोनों वर्णवाले पाली एक साथ अथवा कुछ आगे पीछे छोड़ चले हों, यह स्वभाविक हैं।

तुला राम ने ४५ गोंत्रों को निमंत्रित किया था, परन्तु आये ३३ गोत्र ही थे। राय की पुस्तक में तुलाराम के पूर्वजों के नाम इस प्रकार (–) चिन्ह लगा कर सरल पंक्ति में लिखे गये हैं कि पिता, पुत्र और भाई को अलग कर लेना संभव नहीं। गगा

राम, खेमकरन और घासीराम भाई हो सकते हैं। तुलाराम खेमकरन का तृतीय पुत्र था। धनपति के दो पुत्र गुञ्जा और सोहिल थे। धनपति प्रतिष्ठित श्रीमन्त एवं जाति का नेता था। पल्लीवाल वैश्यों को पालीवाल ब्राह्मणों को १४०० टका (उस समय के दो पैसा) और १४०० सीधा सिद्धाहार जिसमें एक सेर आटा और उसीं माप से दाल, घृत, मसाला देना होता था।[१] यह दैनिक था अथवा तैथिक, पाक्षिक, मासिक, वार्षिक इस संबंध में कुछ ज्ञात नहीं हुआ। परन्तु जैसी राजस्थान में प्रथा है यह पाक्षिक होगा और अमावश्या और पूर्णिमा पर प्रत्येक मास दिया जाता होगा। यह लगान भारी थी। धनिपति ने समस्त पल्लीवाल ब्राह्मण कुलों को एकत्रित करके उक्त वृत्ति में कुछ न्यून करने का सुझाव रक्खा। पल्लीवाल ब्राह्मणों ने उक्त प्रस्ताव पर कुछ भी विचार करने से अस्वीकार किया और इस पर दोनों में भारी तनाव उत्पन्न हो गया। निदान धनपति साह के नायकत्व में पल्लीवाल वैश्य समाज ने पाली का त्याग करके चला जाने का निश्चय किया और वे पाली का त्याग करके मेवाड़, अजमेर, जयपुर, ग्वालियर, मोरेना की ओर चले गये और धीरे-धीरे सर्वत्र राजस्थान, मालवा मध्य-प्रदेश, और संयुक्त प्रान्त में फैल गये।[२]

(१) संख्या १४०० बतलाती है कि पल्लीवाल वैश्य घर १४०० थे। और आज की गणना से संगत ठहरता है।

(२) एक स्थान पर पाली का त्याग सं० १६८१ में किया गया लिखा है।

पाली से पल्लीवाल वैश्य संघ चल कर सहाजिगपुर आया और साडोरा पर्यंत तो संगठित रूप से बढ़ता रहा। साडोरा से विशेषतः संघ सर्व दिशाओं में विसर्जित होकर यथासुविधा जहाँ तहाँ वस गया। धनपति साह के पुत्र गुंजा और सोहिल साडोरा में बसे।[3] गुंजा के ४५ पैतालीस और सोहिल के ७ सात पुत्र हुए। इन (५२) पुत्रों के नाम पर अधिकांश गोत्रों की स्थापना हुई कहा जाता है। पल्लीवाल वैश्यों में इन बावन पुत्रों की स्मृति में ५२ बावन लड्डू विवाहोत्सवों में बेटे वालों को लड़की वालों की ओर से दिये जाते हैं।

पल्लीवाल वैश्यों ने पालीवाल ब्राह्मणों की लगान के कारण और पालीवाल ब्राह्मणों ने राज की भूमि लगान के कारण पाली का त्याग कर दिया और पाली कमजोर हो गई। पल्लीवाल वैश्य उत्तर पूर्व और ब्राह्मण दक्षिण पश्चिम की ओर गये। उत्तर पूर्व व्यापार धंधा के योग्य स्थल होने से वैश्य व्यापार धंधा और कुछ कृषि कार्य में प्रवृत्त हुए और ब्राह्मण दक्षिण पश्चिम में कृषि कार्य में ही पूर्ववत् प्रवृत्त हुए। आज भी दोनों वर्ग उक्त प्रकार ही उक्त प्रान्तों में ही वास कर रहे हैं। वैश्य तो पाली त्याग के समय से पूर्व भी गुर्जर, काठियावाड़,

(३) कहीं सोहिल को पहले और गुंजा को पीछे लिखा है।

नोट—जोधपुर राज्य के इतिहास में इस भारी घटना का कोई उल्लेख नहीं है। राज्य भी यहाँ कारण भूत हो और अपयश को दृष्टि से उल्लेख न किया गया हो।

राम, खेमकरन और घासीराम भाई हो सकते हैं। तुलाराम खेमकरन का तृतीय पुत्र था। धनपति के दो पुत्र गुन्जा और सोहिल थे। धनपति प्रतिष्ठित श्रीमन्त एवं जाति का नेता था। पल्लीवाल वैश्यों को पालीवाल ब्राह्मणों को १४०० टका (उस समय के दो पैसा) और १४०० सीधा सिद्धाहार जिसमें एक सेर आटा और उसीं माप से दाल, घृत, मसाला देना होता था।[१] यह दैनिक था अथवा तैथिक, पाक्षिक, मासिक, वार्षिक इस संबंध में कुछ ज्ञात नहीं हुआ। परन्तु जैसी राजस्थान में प्रथा है यह पाक्षिक होगा और अमावश्या और पूर्णिमा पर प्रत्येक मास दिया जाता होगा। यह लगान भारी थी। धनिपति ने समस्त पल्लीवाल ब्राह्मण कुलों को एकत्रित करके उक्त वृत्ति में कुछ न्यून करने का सुझाव रक्खा। पल्लीवाल ब्राह्मणों ने उक्त प्रस्ताव पर कुछ भी विचार करने से अस्वीकार किया और इस पर दोनों में भारी तनाव उत्पन्न हो गया। निदान धनपति साह के नायकत्व में पल्लीवाल वैश्य समाज ने पाली का त्याग करके चला जाने का निश्चय किया और वे पाली का त्याग करके मेवाड़, अजमेर, जयपुर, ग्वालियर, मोरेना की ओर चले गये और धीरे-धीरे सर्वत्र राजस्थान, मालवा मध्य-प्रदेश, और संयुक्त प्रान्त में फैल गये।[२]

(१) संख्या १४०० बतलाती है कि पल्लीवाल वैश्य घर १४०० थे। और आज की गणना से संगत ठहरता है।

(२) एक स्थान पर पाली का त्याग सं० १६८१ में किया गया लिखा है।

पाली से पल्लीवाल वैश्य संघ चल कर सहाजिगपुर आया और साडोरा पर्यंत तो संगठित रूप से बढ़ता रहा। साडोरा से विशेषतः संघ सर्व दिशाओं में विसर्जित होकर यथासुविधा जहाँ तहाँ बस गया। धनपति साह के पुत्र गुंजा और सोहिल साडोरा में बसे।[3] गुंजा के ४५ पैतालीस और सोहिल के ७ सात पुत्र हुए। इन (५२) पुत्रों के नाम पर अधिकांश गोत्रों की स्थापना हुई कहा जाता है। पल्लीवाल वैश्यों में इन बावन पुत्रों की स्मृति में ५२ बावन लड्डू विवाहोत्सवों में बेटे वालों को लड़की वालों की ओर से दिये जाते हैं।

पल्लीवाल वैश्यों ने पालीवाल ब्राह्मणों की लगान के कारण और पालीवाल ब्राह्मणों ने राज की भूमि लगान के कारण पाली का त्याग कर दिया और पाली कमजोर हो गई। पल्लीवाल वैश्य उत्तर पूर्व और ब्राह्मण दक्षिण पश्चिम की ओर गये। उत्तर पूर्व व्यापार धंधा के योग्य स्थल होने से वैश्य व्यापार धंधा और कुछ कृषि कार्य में प्रवृत्त हुए और ब्राह्मण दक्षिण पश्चिम में कृषि कार्य में ही पूर्ववत् प्रवृत्त हुए। आज भी दोनों वर्ग उक्त प्रकार ही उक्त प्रान्तों में ही वास कर रहे हैं। वैश्य तो पाली त्याग के समय से पूर्व भी गुर्जर, काठियावाड़,

(३) कहीं सोहिल को पहले और गुंजा को पीछे लिखा है।

नोट—जोधपुर राज्य के इतिहास में इस भारी घटना का कोई उल्लेख नहीं है। राज्य भी यहाँ कारण भूत हो और अपयश को दृष्टि से उल्लेख न किया गया हो।

सौराष्ट्र, मालवा, मध्य प्रदेशों में न्यूनाधिक संख्या में पहुंच गये थे, परन्तु पूर्णतः पाली का त्याग इस ज्ञाति ने वि० की सत्तारहवी शताब्दी में ही किया, यह विश्वस्त है।

ऐसा लिखा एवं जानने को भी मिला है कि पल्लीवाल वैश्य केवल पूर्व उत्तर की ओर ही नहीं गये कुछ ब्राह्मणों के संग अथवा आगे पीछे पश्चिम की ओर जैसलमेर वाड़मेर और दक्षिण में कच्छ, कठियावाड़ से आगे भी गये। ये कुशल व्यापारी तो थे ही। जैसलमेर जैसे अनपढ़, अछूत प्रदेश में इन्होंने तुरन्त अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। वहाँ जागीरदार, भूमिपतियों को नकद रकम उधार देते और उनकी समस्त आय ये लेते थे। किसानों के ऊपर भी इन धनियों का प्रभाव पड़ा और वे भी इनके वशवर्त्ती हो गये। कहते हैं कि जैसलमेर के दीवान सावन-सिंह को वैश्यों का यह बढ़ता हुआ प्रभाव एवं प्रभुत्व बुरा लगा और उसने इनका बढ़ता हुआ प्रभुत्व रोका ही नहीं, लेकिन इनको जैसलमेर राज्य छोड़ देने तक के लिये उसने बाधित किया और निदान तंग आकर ये वहाँ से अपने अभिनव निर्मित मकानों को पुनः छोड़ कर बीकानेर, सिंघ और पंजाव आदि प्रान्तों की ओर वढ़े और जहाँ तहाँ वसे। इन प्रान्तों में जहाँ-जहाँ ये पल्ली-वाल वैश्य बस रहे हैं, उनमें प्रायः अधिक उस समय से ही बसते आ रहे हैं। जैसलमेर व बीकानेर राज्य के कई छोटे वड़े ग्रामों में ऊजड़ मकान एवं खण्डहर उनकी स्मृति आज भी करा रहे हैं। ऐसा जानने को मिलता है कि पाली के अधिकारी राजा ने

पाली के श्रीमन्त वैश्यों से यवन शत्रुओं के विरूद्ध युद्ध में अर्थ सहायता एवं जन सहाय मांगा। और यह स्वीकार न करने पर उसने वैश्यों को पाली एक दम त्याग करके चले जाने की आज्ञा दी। यह भ्रामक एवं मिथ्या विचार है। तेरहवी शताब्दी में राव सीहा का पाली पर प्रभुत्व स्थापित हो चुका था। उसके वंशजों में से आज पर्यंत किसी एक नृप को भी यवन सत्ता के विरूद्ध लड़ना न पड़ा। तब यवन शक्ति से लड़ने के लिये सहाय मांगने का विचार उठता ही नहीं। राव सीहा की सत्ता के पूर्व पाली पर जाबालिपुर के राजा का अधिकार था। राव सीहा के पूर्व पाली त्याग का प्रकरण नहीं बना। तब किसी नृप की यह आज्ञा कि पाली त्याग कर चले जाओ उस समय की घटित वस्तु भी नहीं मानी जा सकती।



पल्लीवाल ज्ञाति का प्रसार और उसके गोत्र

तथा

रीति रिवाज

किसी भी समूची ज्ञाति का व्यवस्थित इतिहास निवास, स्थिति, धर्म, धंधा आदि की दृष्टियों से लिख देना अत्यन्त कठिन है और यह वांछनीय भी नहीं होता। जिनके जीवन में 'हास' की इति रही है अर्थात् जिन नरवरों ने सम्पूर्ण जीवन महान् संघर्ष झेल कर देश, धर्म, समाज अथवा पुर प्रान्त की सेवा की और अपने कुल को ऊपर उठा कर विश्रुत बनाया है उनका ही उल्लेख होता है ऐसे पुरूष ही इतिहास के पृष्ठ बनाते हैं। भारत में फिर केवल राजवंशों के अतिरिक्त अन्य वंश अवगणना को ही प्राप्त होते रहे हैं। और महाजन अथवा वैश्य वंश तो लगभग अधिकांश में अवगणित ही रहा है। केवल उन वैश्य कुलों का और उनमें भी उन पुरुषों का जो किसी राज कुल की सेवा में रहा, उससे प्रतिष्ठा प्राप्त की अथवा कोई तीर्थ या साहित्य की स्मरणीय सेवा की। कुछ-कुछ वर्णन अगर कहीं हो गया और मिल गया तो उनको इतिहास के पृष्ठों में व्यक्तिगत बैठा दिया जाता है। उनके साधारण पूर्वज और वंशजों का फिर कोई पता नहीं चलता। ऐसी विषम स्थिति में किसी भी

ज्ञाति का विकाश प्रसार सम्बंध बिवरण तैयार करना असंभव कार्य है, फिर भी प्रस्तुत इतिहास में पल्लीवाल ज्ञाति कहाँ से कहाँ गई, कहाँ बसी का कुछ लेखा दिया गया है। इस प्रकरण में प्रसार और गोत्रों को लक्ष्य कर के प्राप्त सामग्री के आधार पर जितना पूरा और अधिक वर्णन दे सकता हूँ उतना देने का प्रयास किया है।

आज तो पल्लीवाल बंधु भारत के प्रायः सर्व भागों में पाये जाते हैं परन्तु १६-१७ शताब्दी में ये उत्तर पूर्व १. जगरोठी (जयपुर राज्य), २. वराभरी (भामरी), ३. मेवात (अलबर राज्य), ४. माड़घोई (पहाड़ घोई), ५. कांठेर (कांठेंर भरतपुर), ६. आगर वाटी (आगरा प्रान्त), ७. डांग, ८. करौली (करौली राज्य), और ९. ग्वालियर (मध्य प्रदेश मुरैना आदि) इन ९ भागों में और दक्षिण पश्चिम के जेसलमेर-राज्य, बीकानेर राज्य तथा कच्छ, कठियावाड़ सौराष्ट्र के कोई-कोई पुर, नगरों में रहते थे। उदयपुर, अजमेर, जोधपुर, सिरोही के राज्य तो पाली के चतुर्दिक आ गये हैं। अत: इनका इन नगरों अथवा इन राज्यों में पाया जाना तो वहुत पहिले से था। सतरहवीं शताब्दी पश्चात् इन नगर और प्रान्तों में भी संख्या बढ़ी। छीपा पल्लीवाल अलीगढ़, फिरोजाबाद, कन्नौज, फरुक्खावाद, हापड़, देहली, अतरौली, छतारी, कोड़ियागंज, पिडरावल, पहासु, सासनी, काजमाबाद में बसे हुए थे।

गोत्रों पर विचार करते समय यंह ध्यान में आता है कि अन्य जैन वैश्यज्ञातियों के गोत्रों की स्थापना से इस ज्ञाति के गोत्र की स्थापना का ढंग अलग रहा है। अन्य ज्ञातियों में अनेक गोत्र सम्मिलित हुए और इस ज्ञाति में ज्ञाति के बन जाने के कई शताब्दियों पश्चात् गोत्रों में विभाजन हुआ। धनपति शाह के गुंजा के ४५ पुत्र और सोहिल के ७ पुत्र इन बावन पुत्रों से बावन गोत्र बने, कहा जाता है; परन्तु मुझे इसमें एक वस्तु देखकर शंका उत्पन्न होती है कि कई गोत्र ग्रामों के पीछे भी नाम विश्रुत हुए हैं जैसे वडेरी ग्राम से वडेरिया, सलावद से सलावदिया, पींगौरे से पींगोरिया आदि। ज्ञाति में बावन गोत्र माने जाते हैं और वे भी गुंजा और सोहिल के बावन पुत्रों से। तब ग्रामों के पीछे जो गोत्र पाये जाते हैं उनकी स्थिति क्या है।' तात्पर्य यह है कि ज्ञाति के अधिक गोत्र गुंजा और सोहिल के पुत्रों से और कुछ गौत्र ग्रामों के नामों से बने—मानना अधिक संगत है। नीचे बावन गोत्र की सूची दी जाती है। ग्रामों से परिचित पाठक स्वयं समझ सकेंगे कि किस गोत्र के नाम में किस ग्राम के नाम का समावेश है।

गुलन्दराय की जीर्ण पुस्तक से ली गई गोत्र सूची, रीति-प्रभाकर से उद्धृत सूची, तुलाराम की संघ यात्रा की गोत्रसूची—इन तीनों को मिलाकर गोत्र सूची प्रस्तुत की है।

पल्लीवालों के ५२ गोत्र

सगेसुरिया, नंगेसुरिया, नागेसुरिया यानी सलावदिया,
१ २ ३

डगिया मसंद, डगिया सारंग डगियारकस,
४ ५ ६

जनूयरिया ईट की थाप, जनूयरिया कौम की थाप, राजोरिया,
७ ८ ९

चौर वंवार, बहैत्तरिया, भरकौलिया, बरवासिया, वारौलिया,
१० ११ १२ १३ १४

वडेरिया, अठवरसिया, नौलाठिया, पावटिया, लैदौरिया,
१५ १६ १७ १८ १९

गिद्धोरावकस, धाती, कोटिया, नौधी, लोहकरेरिया, सैंगरवासिया,
२० २१ २२ २३ २४ २५

तिलवासिया, चांदपुरिया, वारौलिया, दिवरिया, व्यानिया, वैद,
२६ २७ २८ २९ ३० ३१

कासामीरिया, निगोहिया, खैर, चकिया, विलनमासिथा, डडुरिया,
३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७

नौहराज, गुढ हैलिया, भावरिया, कुरसोलिया, खोहवाल,
३८ ३९ ४० ४१ ४२

पचौरिया, वांरीवाल, गुदिया, निहानिया, लपटकिया, दादुरिया,
४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८

गिदौरिया,	भोवार,	माईमूड़ा,	गुवालियर।
४९	५०	५१	५२

वैसे तो समस्त पल्लीवाल ज्ञाति एक वर्ग हैं, परन्तु विभिन्न भागों में, राज्यों में विभाजित हो जाने के कारण और सहज यातायात के साधनों के अभाव और प्रान्त, प्रदेशों की दूरी के कारण परस्पर का सम्बन्ध स्थगित हो गया और परिणाम यह आया कि छीपी पल्लीवाल, मुरेना-मध्य प्रदेश के पल्लीवाल और शेष बड़े भाग के पल्लीवालों में भोजन-व्यवहार एवं कन्या-व्यवहार बन्द हो गये। दोनों ओर नवीन गोत्रों की उत्पत्ति से अन्तर गहराई को पहुँच गया। कच्छ, काठियावाड़, सौराष्ट्र, गुर्जर प्रदेशों में बसे हुए पल्लीवाल तो सदा के लिये ही दूर हो गये और उनको अपने गोत्र भी स्मरण नहीं रहे।

छीपापल्लीवाल गोत्र	मुरेना-मध्य प्रदेश के पल्लीवाल गोत्र
१ अकबरपुरिया	१ कायरे
२ अगरैय्या	२ काश्मेरिया
३ औरंगाबादी	३ खेरोनिवाल
४ कठमत्या	४ खोहवाल
५ कठोरिया	५ खेर
६ करोड़िया	६ गुदिया
७ करोनिया	७ ग्वालियरे
८ काश्मेरिया	८ चौमुण्डा (चौखम्बार)

६	कोनेवाल	६	चौधा
१०	गिदौरया	१०	डडूरिया
११	चीनिया	११	दमेजरे
१२	चौधरिया	१२	दिवस्या
१३	जिवरिया	१३	धनवासी (धाती)
१४	टेनगुरिया	१४	घुरेनिया
१५	ठाकुरिया	१५	नगेसुरया
१६	डडूरिया	१६	निहानिया
१७	दरवाजे वाल	१७	पचोरिया
१८	धनकाडिया	१८	पाडे
१६	नगेसुरिया	१६	पावटिया
२०	नारंगावादी	२०	महेला
२१	पटपस्या	२१	माईमूड़ा
२२	पहाडुआ	२२	रायसेनिया
२३	फिरोजाबादी	२३	लखटकिया
२४	भजोरिया	२४	लोहकरेरिया
२५	मवाड़िया	२५	बड़ेरिया
२६	वजोरिया	२६	वरंवासिया
२७	वरवासिया	२७	वारीवाल
२८	वाकेवाल	२८	वैद भगोरिया
२६	वारीलखु (सु)	२६	व्यानिया
३०	वैदिया	३०	बंजारे

३१	सक्रटिया	३१	समल
३२	सैंगर वासिया	३२	सलावदिया
३३	हलकतिया	३३	सारग डग्या
		३४	साले
		३५	सैंगर वासिया

पल्लीवाल-महासमिति की बैठक जो वि० सं० १९८२ कार्त्तिक शु० १४ तदनुसार सन् २५/१७ नम्बर को अछनेरा में हुई थी उसमें ४६ ग्राम, नगरों के प्रतिनिधियों की सर्वसम्मति से मुरेना-मध्य भारत के पल्लीवाल बन्धुओं को भोजन एवं कन्या व्यवहार में सम्मिलित किया गया था। इसके पश्चात् मुरेना एवं मध्य-भारत के पल्लीवाल बन्धुओं ने आगरे के प्रतिष्ठित सज्जन पंडित चिरंजीलाल के सभापतित्व में मुरेना में सम्मेलन करवाया और उसमें लगभग २०० दो सौ ग्रामों के प्रतिनिधि उपस्थित थे। भारी समारोह के मध्य भोजन एवं कन्या व्यवहार-वर्त्ताव की पुनः पुष्टि की गई।[१] सन् १९३३ फिरोजाबाद के अधिवेशन में छीपा-पल्लीवालों के साथ भोजन-कन्या व्यवहार चालू करने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था। आमिया और आमेश्वरी गोत्रीय

---

१. 'पल्लीवाल जैन; आगरा, सन् १९४१ अप्रैल।

सैलवार भी पल्लीवालों के साथ ही कन्या-व्यवहार करते थे। [२]

विभिन्न प्रान्त एवं राज्यों में विभाजित यह पल्लीवाल ज्ञाति भले दूर-दूर तक फैली हो; परन्तु जन संख्या में मेरे विचार से वैश्य ज्ञातियों में सव से छोटी जाति है। लगभग ३५० ग्रामों में वसती है और जन संख्या में लगभग ९००० नौ सहस्त्र कुल स्त्री-पुरुष-वाल-वच्चे मिलकर हैं। जन-संख्या का एक कोष्टक जो मास्टर कन्हैयालाल जी ने सन् १९२० में प्रस्तुत किया था उसको यहाँ उद्‌घृत किया जा रहा है। [3]

---

२. लगभग १५० वर्ष पूर्व दोवान रामलाल जी चौधरी पल्लीवाल का विवाह अलवर के दीवान लाला सालिगराम जी सैलवाल के यहां हुआ था। सैलवान और जैसवाल दोनों में तो पूर्व से ही कन्या व्यवहार था ही। वैसे दोनों ज्ञातियां विशेषतः जैन धर्मी थीं ही। उपरोक्त विवाह से इन दोनों जातियों का विवाह सम्वन्ध पल्लीवालों में भी प्रारम्भ हो गया।

३. तीनों दलों में अनेक गोत्रों की एवं धर्म की समानता है और इस गोत्रीय एवं धर्म की समानता पर ही आधुनिक सुधारवादी पल्लीवाल वन्धु भोजन-कन्या-व्यवहार परस्पर चालू करने में अनुकरणीय सुधार कर सके हैं।

पल्लीवाल ज्ञाति-जन गणना

सन् १९२० ई०

क्रम संख्या	प्रान्त राज्य	ग्राम-पुर सं०	घर-गणना	पुरुष	स्त्री	योग	शिक्षित	अशिक्षित	विवाहित	अविवाहित	विधुर	नौकरी	व्यापारी
१	अजमेर	×	२६	५७	३४	९१	५५	३६	३२	४१	१८	१५	११
२	अलवर	४५	१९६	५७१	५०२	१०७३	३२६	७४७	४४५	४६४	१६४	५५	१४१
३	आगरा	५४	२४५	५८७	५२१	११०८	४९७	६२१	५३८	३८७	१८३	९९	१४६
४	करौल	३	१९	७०	६२	१३२	५२	८०	५९	४८	२३	५	१४
५	कानपुर	×	१	४	४	८	७	१	७	१	×	×	१
६	ग्वालियर	१५	३५	६८	६३	१३१	५६	७५	६२	४७	२२	२	३३

७	गाजीपुर	१	१	२	१	३	२	१	२	१	×	×	११
८	जयपुर	७३	२८६	८३७	७६१	१६२८	४७५	११५३	७३८	६५३	२३७	७१	२१८
९	नयानगर	×	१	८	६	१७	७	१०	१०	६	१	१	×
१०	फरुक्खा-वाद	×	१	१	२	३	१	२	२	१	×	१	×
११	भरतपुर	७५	२२६	६१०	५१२	११२२	३६६	७२६	४७५	४४७	२०१	४३	१८६
१२	मथुरा	२१	५०	१४४	११७	२६१	१११	१५०	६६	१०१	६१	६	४२
१३	सिरोही	१	५	१२	६	२१	१	२०	८	८	५	×	५
		१८८	१०६८	२६७१	२६२७	५५६८	१६७६	३६२२	२४७७	२२०५	६१५	३०१	७६८

इस कोष्टक में छीपापल्लीवालों को जो कन्नौज, अलीगढ़, दिल्ली आदि कई नगर ग्रामों में बसे हैं, की गणना नहीं है और इस जन-गणना,कोष्टक में जयपुर, अलवर, भरतपुर स्थानों को छोड़कर शेष राजस्थान के उदयपुर राज्य, प्रतापगढ़, डूंगरपुर जोधपुर, जैसलमेर के स्थानों में जन-गणना करते समय भ्रमण नहीं किया गया प्रतीत होता है। छीपा पल्लीवालों की गणना का विचार भी छोड़ दिया ज्ञात होता है। बीकानेर अस्पर्शित है। परन्तु इन राज्यों और अन्य इस ही प्रकार छूटे हुए भारत के भाग में कठिनतः पल्लीवाल १०००-१२०० घर होंगे। मुख्यतः तो घनी आबादी वाले भागों का उपरोक्त कोष्ठक में अंकन आ चुका है। तात्पर्य यह निकलता है कि सन् १६२० ई० में पल्ली वाल ज्ञाति की जन गणना समस्त स्पर्शित-अस्पर्शित भागों के निवासियों को मिलाकर भी ६०००-६५०० होगी; इससे अधिक नहीं। लगभग ५० वर्ष पहिले किसी धनाढ्य ने विवाह में घर पीछे एक बेला व चबेनी बाँटी थी, जिसमें छकड़े भरकर गाँवों में भेजे गये थे, उस समय ६००० घरों की संख्या बैठी थी। अब खेद है कि संख्या इतने वर्षों में इतनी कम हो गई है।

---

१. गुर्जर-सौराष्ट्र के भागों में पल्लीवाल बहुत कम संख्या में हैं और वे भी रेल आदि यातायात के साधनों और मीलों में बहुत २-दूर। व्यय के अधिक पड़ने के भय से इन अछूते स्थानों में जनगणना करते समय भ्रमण नहीं किया गया प्रतीत होता है। छीपा पल्लीवालों की गणना का विचार भी छोड़ दिया गया प्रतीत होता है

रीति-रिवाज

१— पल्लीवालों के जहां मन्दिर हैं वहां भादवा मास में पर्यूषणपर्व (अठाई) बदी १३ से पंचमी तक मानी जाती हैं।

२— पल्लीवालों के कई मन्दिरों से लगे हुए उपाश्रयों में जतीजी रहते थे और वही धार्मिक क्रियायें कराते थे।

३— पल्लीवालों के मन्दिरों में श्री महावीर प्रभु के निर्वाण का लड्डू कार्तिक कृष्णा अमावस्या की पिछली रात को अर्थात कार्तिक शुक्ला १ प्रतिपदा की भोर होने से पूर्व चढता है।

४—विवाह के अवसर पर मेलौनी होती है जिसके मुताबिक सब विरादरी वालों से जो वारात में शामिल होते हैं कुछ चन्दा मन्दिर के खर्च को व किसी पुण्य के काम के निमित्त उघाया जाता है। यह चन्दा घराती बराती दोनों जगहों के मनुष्यों से इकठ्ठा किया जाता है। इसमें हर एक मनुष्य अपनी इच्छानुसार जो चाहे दे सकते हैं। बेटे वाला १।) रुपये से १०१) रुपये तक दे सकता है। वेटी वाला और उसके घराती भी अपनी इच्छानुसार भेंट करते हैं

५— लड़कालड़की कीं सगाई में चार वातों का बचाव किया जाता है। १निजगोत्र, २ लड़का लड़की के मामा का गोत्र, ३ लड़का लड़की के वाप के मामा का गोत्र, ४ लड़का लड़की की माताके मामा का गोत्र। इन चारों गोत्रों में कोई गोत्र किसी से मिले तो सगाई नही होती है और जब नाते और जन्म पत्री की राह से विधि मिल जाती है, तव सगाई होती है।

चौरासी न्यात

चौरासी न्यातों तथा उनके स्थानों के नामों का विवरण

सं०	नाम न्यात	स्थान से
१.	श्रीमाल	भीनमाल
२.	श्री श्रीमाल	हस्तिनापुर
३.	श्री खंड	श्रीनगर
४.	श्रीगुरु	आभूना डौलाई
५.	श्रीगौड़	सिद्धपुर
६.	अगरवाल	अगरोहा
७.	अजमेरा	अजमेर
८.	अजोंधिया	अयोध्या
९.	अड़ालिया	अढ़ाणपुर
१०.	अवकथवाल	आंवरे आभानगर
११.	ओसवाल	ओसियाँ नगर
१२.	कठाड़ा	काट्ठू
१३.	कटनेरा	कटनेर
१४.	ककस्थन	वालकूंड़ा
१५.	कपोला	नग्रकोट
१६.	कांकरिया	करौली
१७.	खरवा	खेरवा

१८.	खडापता	खंडवा
१९.	खेमवाल	खेमा नगर
२०.	खंडेलवाल	खंडेला नगर
२१.	गंगराड़ा	गंगराड़
२२.	गाहिलवाल	गोहिलगढ़
२३.	गौलवाल	गौलगढ़
२४.	गोगवार	गोगा
२५.	गोदोड़िया	गोंदोडदेवगढ़
२६.	चकौड़	रणथंभ चकावा
२७.	चतुरथ	चरणपुर
२८.	चीतौड़ा	चित्तौरगढ़
२९.	चौरंडिया	चावंडिया
३०.	जायसवाल	जावल
३१.	जालौरा	सौवनगढ़ जालौर
३२,	जैसवाल	जैसलगढ़
३३.	जम्बूसरा	जम्बू नगर
३४.	टींटौड़ा	टोंटौण
३५,	टंटौरिया	टंटेरा नगर
३६.	टूंसर	ढाकसपुर
३७.	दसौरा	दसौर
३८.	धवलकोष्टी	धौलपुर

३९. धाकड़	धाकगढ़
४०. नालगरेसा	नराणपुर
४१. नागर	नागरचाल
४२. नेमा	हरिश्चन्द्रपुरी
४३, नरसिंधपुरा	नरसिंघापुर
४४. नवांभरा	नवसरपुर
४५. नागिन्द्रा	नागिन्द्र नगर
४६. नाथचल्ला	सिरोही
४७. नाछेला	नाड़ोलाई
४८. नौटिया	नौसलगढ़
४९. पल्लीवाल	पाली
५०. परवार	पारानगर
५१, पंचम	पंचम नगर
५२. पौकरा	पोकरजी
५३. पोरवार	पारेवा
५४. पौसरा	पौसर नगर
५५. वघेरवाल	वघेरा
५६. वदनौरा	वदनौर
५७. वरमाका	ब्रह्मपुर
५८. विदिपादा	विदिपाद
५९. वौगार	विलासपुरी
६०. भगनगे	भावनगर

६१. मूंगड़वार	भूरपुर
६२. महेश्वरी	डीडवाड़ा
६३. मेड़तवाल	मेड़ता
६४. माथुरिया	मथुरा
६५. मौड़	सिद्धपुरपाल
६६. मांडलिया	मांडलगढ़
६७. राजपुरा	राजपुर
६८. राजिया	राजगढ़
६९. लवेचू	लावा नगर
७०. लाड़	लावागढ़
७१. हरसौरा	हरसौर
७२. हूंमड़	सादवाड़ा
७३. हलद	हलदा नगर
७४. हाकरिया	हाकगढ़ नरलवरा
७५. सांभरा	सांभर
७६. सड़ोइया	हिंगलादगढ़
७७. सरेडवाल	सादरी
७८. सौरठवाल	गिरनार सौराष्ट्र
७९. सेतपाल	सीतपुर
८०. सौहितवाल	सौहित
८१. सुरन्द्रा	सुरेन्द्रपुर अवन्ती
८२. सोनैया	सोनगढ़
८३. सौरंडिया	शिवगिराणा

इतिहास कल्पद्रुम माहेश्‍री कुल शुद्ध दर्पण व जैन सम्प्रदाय शिक्षा

श्वेताम्बरी ८४ गच्छ

श्री वज्रसेन जी के बाद नागेन्द्र, चन्द्र, निवृति और विद्याधर यह चार आचार्य बने। इनमें से प्रत्येक की इक्कीस २ सम्प्रदाय हुईं। इस प्रकार चौरासी गच्छ हुए।

१. ओसवाल
२. जीरावला
३. वड़गच्छ
४. पुनमिया
५. गंगेसरा
६. कोरंटा
७. आनपुरा
८. भरुअछा
९. उड्वीया
१०. गुदवीया
११. उदकाउआ
१२. भिन्नमाल
१३. मुड़ासिया
१४. दासाएआ
१५. गच्छपाल
१६. घोषवाल
१७. साचोरा
१८. कुचड़िया
१९. सिद्धांतिआ
२०. रामसेनीआ
२१. आगमीक
२२. मलधार
२३. भावराज
२४. पल्लीवाल
२५. कोरंडवाल
२६. नागेन्द्र
२७. धर्मघोष
२८. नागोरी
२९. उच्छीतवारल
३०. नाणवाल
३१. सांडेरवाल
३२. मांडोवरा

३३. जांगला
३४. छापरिया
३५. वारेसड़ा
३६. द्विवंदनीक
३७. चित्रपाल
३८. वेगड़ा
३९. वापड़
४०. विजाहरा
४१. कुवगपुरा
४२. काछेलिया
४३. सद्रोली
४४. महुदेवाकरा
४५. कपुरसीया
४६. पूर्णतल
४७. रेवइया
४८. सार्धपुनमीया
४९. नगर कोट्रिया
५०. हिसारिया
५१. भटनेरा
५१. जीतहरा
५३. जमापन्न
५४. भीमसेन
५५. आतागड़िया
५६. कंवोआ
५७. रेवतरिया
५८. वाघेरा
५९. वाहेड़िया
६०. सिद्धपुरा
६१. घोघाघरा
६२. नीगम
६३. सगनाती
६४. मंगोडी
६५. ब्राह्मणिया
६६. जालोरा
६७. वोकड़िया
६८. मुभाहरा
६९. चित्रोड़ा
७०. सुराणा
७१. खंभाती
७२. वड़ोदरिया
७३. सोपारा
७४. मांडलिया
७५. कोठी (सो)पुरा
७६. घुंधका

७७. थंभणा	८१. गुवलिया
७८. पंत्रवलहीया	८२. वारेजा
७९. पालणपुरा	८३. मुरंडवाल
८०. गंवारा	८४. नागडला

जैन साहित्य संशोधक खंड ३ अंक १ से उद्धृत।



पालीवाल ब्राह्मण

वैसे तो कुछ कुछ संकेत पाली में पल्लीवाल-ब्राह्मणों के निवास, पाली-त्याग और पल्लीवाल वैश्यों के साथ इनके संबंध के विषय में इस प्रस्तुत लघुवृत में यत्र-तत्र आ चुके हैं। परन्तु जो कुछ इनके सम्बंध में अब तक ज्ञात हो सका है वह और ये मिलाकर एक स्वतंत्र शीर्षक से लिखूं तो अधिक ठीक होगा।

पालीवाल ब्राह्मण पाली में अपनी ज्ञाति के एक लाख घर होना कहते हैं। यह प्रवाद भ्रामक है। पाली समृद्ध और बड़ा नगर अवश्य था, लेकिन केवल पल्लीवाल ब्राह्मणों के ही एक लाख घर थे तो अन्य जातियाँ जो वहाँ वसती थीं, उन सर्व के मिलाकर कितने लाख घर पाली में होंगे और फिर पाली में जब कई लाख घर वसते थे तो ऐसे पाली के संबंध में जोधपुर-राज्य के इतिहास में उतना चढ़ा-बढ़ा वर्णन क्यों नहीं ? पल्लीवाल वैश्य १४०० सीधा और १४०० टक्का पालीवाल ब्राह्मणों को दिया करते थे। इस दृष्टि से पाली में इनके भी लगभग १४००-१५०० ही घर होंगे और उनमें ७५००-८००० अथवा १०००० दस सहस्त्र आबाल वृद्ध होंगे।

पाली में ये लोग विशेषतः कृषि करते थे और राज्य को कोई कर नहीं देते थे और राज्य भी इनसे कोई कर नहीं लेता था।

इनकी संख्या अधिक होने से पाली की समस्त कृपियोग्य भूमि पर इनका ही अधिकार था। अन्य ज्ञातियों को भूमि नहीं मिल सकती थी। पाली समृद्ध एवं व्यापारी नगर होने से राज्य को उसकी सुरक्षा, शासन-व्यवस्था के संबंध में भारी व्यय करना पड़ता था। निदान राज्य ने इन ब्राह्मणों के अधिकार में जो अधिक भूमि थी वह और जो इन्होंने बल-प्रयोग से नियम विरुद्ध अधिकार में कर रखी थी वह तथा निस्संतान मरने वालों की जो भूमि थी वह-जब राज्य में लेना प्रारंभ किया तो यह लोग राज्य से एक दम रुष्ट होकर पाली त्याग करने पर उतारू हो गये। उधर वैश्य भी सोधा और दक्षिणा के भार से अपने को हल्का करना चाहते थे। दोनों ओर से निराशा उमड़ती देखकर वि० की सतरहवीं शताब्दी के अंतिम भाग में ये पाली का त्याग कर के निकल पड़े। दक्षिण पच्छिम के प्रान्तों में जा कर बसे। बीकानेर, जैसलमेर पश्चिम में और डूंगरपुर, उदयपुर बांसवाड़ा प्रतापगढ़ तथा रतलाम सेलाना, सीतामऊ और धार-निमाड़ के राज्य, प्रान्तों में ये फैल कर बसगये। मेवाड़ में ये लोग नन्दवाना कहलाते हैं। कुछ लोग धीरे धीरे कलकत्ता तक भी पहुँचे और वहाँ ये बोहरा कहे जाते हैं। पल्लीवाल वैश्यों ने भी इनके साथ और आगे-पीछे निकट में पाली का त्याग किया, उस सम्बंध में संबंधित प्रकरणों में कहा जा चुका है।

आज पाली में पालीवाल ब्राह्मणों के लगभग ५०० पांच सौ घर बस रहे हैं। इनका वहां मोहल्ला भी है। यह प्रतिज्ञा करके

इन्होंने पाली का त्याग किया था कि पल्लीवाल कहाने वाला तो पाली में फिर न वसेगा। इस प्रतिज्ञा के विरोध में अभी पाली में इनके घर वसते हैं। इसका कारण यह है कि जब वैश्य और ब्राह्मण दोनों पल्लीवाल ज्ञातियों ने पाली का त्याग सदा के लिये कर दिया तो यह संभव है और सहज समझ में आने जैसी वस्तु है कि इन प्रभाव-शाली दो ज्ञातियों के संग संग इन पर निर्वाह करने वाली इनसे संबंधित ज्ञातियां और कुलों ने भी अवश्य पाली का त्याग किया होगा। उसी समय से जहां जहाँ ये दोनों ज्ञातियां पाली त्याग कर गईं, वसी, वहाँ वहाँ लोहार, सुनार खाती आदि कई ज्ञातियाँ वसी और वे भी पालीवाल लोहार, पालीवाल सुनार इस प्रकार ही कही जाती हैं'

पाली से जैसलमेर, बीकानेर और उदयपुर के राज्य कुछ ही अन्तर पर आ गये है फलतः इन तीनों राज्यों में पालीवाल ब्राह्मण अधिकतर वसे हुए है। उदयपुर राज्य में नाथद्वारा और इसके आस-पास के प्रदेश में पालीवाल ब्राह्मण अच्छी सख्या में बसे हुए हैं। तात्पर्य यह है कि इन्होंने, वैश्यों ने और कुछ अन्य ज्ञातियों ने जब पाली का त्याग कर दिया और पुनः लौट कर कोई पाली की ओर मुड़ा तक नहीं, तो पाली की समृद्धता एक दम लुप्त हो गई। पाली नगर सून--सान सा हो गया। पाली के कारण जो मारवाड़ और राजस्थान का व्यापार तिव्वत अरव, अफ्रीका, यूरोप तक फैला हुआ था उसको एक भारी धक्का लगा। हो सकता है जोधपुर के नरेश ने इस धक्के का

अनुभव होने पर पुनः कुछ विचार किया हो और पालीवाल ब्राह्मणों से व्रत अथवा प्रतिज्ञा भंग करने का साग्रह अनुरोध किया हो। ब्राह्मण'क्षणेतुष्टा क्षणेरुस्टा; भी तो कहे गये हैं। राजा फिर जोधपुर जैसे बड़े एवं समृद्ध राज्य के नरेश के आग्रह को मान देकर समीप के भागों में जाकर बसे हुए ब्राह्मण पुनः पाली में आ कर बस गये हैं। तभी तो पाली में आज भी इन ब्राह्मणों के लग भग ५०० घर आवाद हैं और वे अपने प्रत्यावर्तन के हेतु में उपरोक्त आशय जैसी ही बात बतलाते हैं।

पालीवाल ब्राह्मण चुस्त वैष्णव हैं। ये अधिकतर कृष्ण के उपासक हैं जहाँ ये होंगे वहाँ ठाकुर जी (कृष्ण जी) का मंदिर अवश्य होगा। ये लोग भिक्षा नहीं माँगते। कृषि करते हैं और कोई कोई व्यापार करते हैं। इनमें एक दम निर्धन कोई देखा नहीं जाता। गांव में इनका अच्छा आदर रहता है। कुंआ खुदवाना, वापिका बनाना औरमंदिर बनाना यह बहुत ऊंचा धर्म अथवा मानव सेवा का कार्य समझते हैं। परस्परइनमें बड़ा मेल होता है। अपने निर्धन अथवा कर्महीन ज्ञाति बंधु की सहायता करना ये अपना परम सौभाग्य मानते हैं। कृषक पाली-वाल ब्राह्मणों से राज्य भी प्रायः कर वसूल नहीं करते थे। इनके समृद्ध अथवा अर्थ की दृष्टि से कुछ कुछ ठीक होने का एक मुख्य कारण यह हो सकता है। इस पद्धति से ये सहज धीरे धीरे कुछ रकम जमाकर सकते थे औरफिर व्यापार में भी भाग ले सकते थे। अतः ये स्वयं

कृषि भी कम करते हैं। ये तो कृषि करवाते हैं और रखेल कृषि से आधा अथवा तीजा चौथा भाग फसल का ले लेते थे। आज भी इस ज्ञाति के अधिकांश घर इस पद्धति पर ही कृषि करते और करवाते हैं।

पालीवाल ब्राह्मणों के १२ बारह गोत्र कहे जाते हैं, परन्तु अब केवल गर्ग, पाराशर, मुद्गलस, आजेय, उपमन्यस, वाशिष्ट और जात्रिस ही रह गये हैं। पाली में पाराशर गौत्रीय ब्राह्मणों का अधिक प्रभाव था। इनके गोत्र जाजिया, पूनिद, धामट,भायल, ढूमा, पेथड़, हरजाल, चरक, सांदू कोरा, हरदोलया, बनया यह बारह थे। पालीवाल ब्राह्मण जनेऊ रखते हैं, यज्ञ करते हैं ,मृत का दाह संस्कार करते हैं। ये रक्षा बंधन का श्रावण १५ का त्योहार नहीं मनाते हैं। इसका कारण यह बतलाते है कि उस दिन इनको भारी विपत्ति का सामना करना पड़ा था और पाली का त्याग करना पड़ा था।



पल्लीवाल वंश कुल भूषण श्रेष्ठि नेमड़ और उसके वंशजों का धर्म कार्य

मरूधर (राजस्थान) के नागौर[1] (नागपुर) में वि० की तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में पल्लीवाल कुलोत्पन्न सरल हृदय, सुश्रावक श्रेष्ठि वरदेव हो गया है। उसकी प्रसिद्धता पर उसके वंशज 'वरहुड़िया' कहलाये। वरदेव के प्रसिद्धि की कीर्त्तिमान् पुत्र ग्रासदेव और लक्ष्मीधर हुए। सुश्रावक ग्रासदेव और लक्ष्मीधर दोनों के चार-चार पुत्र हुए। ग्रासदेव के प्रसिद्ध गौरववन्त नेमड़ और क्रमशः ग्राभट, माणिक और सलषण तथा लक्ष्मीधर के ज्येष्ठ पुत्र थिरदेव और क्रमशः गुणधर नाम के पुत्र हुए। नेमड़ के तीन पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र राहड़ था, जो बड़ा विनयी, धर्मात्मा एवं सद्‌गुणी था। द्वितीय एवं तृतीय पुत्र जयदेव और सहदेव थे। ये दोनों भी अपने बड़े भ्राता के सदृश ही गुणी, धर्मात्मा और आज्ञावर्ती थे। राहड़ के दो स्त्रियां लक्ष्मीदेवी और नायिकी नामा शीलगुणसम्पन्न थीं। जयदेव का विवाह जाल्हणदेवी से और सहदेव का विवाह सुहागदेवी नामा कन्याओं से हुआ था। सुहागदेवी को सौभाग्य-देवी भी लिखा है।

नेमड़ का वंश परिचय

श्रेष्ठि राहड़ के पांच पुत्ररत्न हुए। लक्ष्मीदेवी से जिनचन्द्र और दूल्ह तथा नायिकी से धनेश्वर, लाहड़ और अभयकुमार।

जिनचन्द्र की स्त्री का नाम चाहिणी था। चाहिणी की कुक्षी से एक पुत्री धाहिणी नामा और पांच पुत्र-क्रमशः देवचन्द्र, नामधर, महीधर, वीर धवल और भीमदेव हुए। श्रेष्ठि जिनचंद्र प्रतिदिन धर्म-कार्यों में ही रत रहता था। उसके उक्त चारों पुत्र और पुत्री सर्व बड़े जिनेश्वर भक्त थे। ये 'तपा' विरुद के प्राप्त करने वाले श्री जगच्चन्द्रसूरि के शिष्य श्री देवभद्रगणि, विजय चन्द्रसूरि-एवं देवेन्द्र सूरि त्रिपुटी के अनन्य भक्त थे।

नायिकी के पुत्र धनेश्वर के दो स्त्रियां थीं-खेतू और धनश्री। अरिसिंह नामक इसके पुत्र था। प्रसिद्ध लाहड़ के लक्ष्मी श्री (लखमा) नामक स्त्री थी। लाहड़ ने कई धर्मकृत्य किये, जिनका परिचय आगे दिया जायगा। लाहड़ के कोई सन्तान नहीं थी।

जयदेव की स्त्री का नाम जाल्हणदेवी था। जाल्हणदेवी की कुक्षी से क्रमशः वीरदेव, देवकुमार और हालू नामक त्रयपुत्र रत्न हुए। इन तीनों की सुशीला स्त्रियां क्रमशः विजय श्री, देवश्री और हर्षिणी नामा थीं।

सहदेव की स्त्री सुहागदेवी की कुक्षी से प्रसिद्ध पेढ़ा और गोसल दो पुत्र उत्पन्न हुए। पेढ़ा की स्त्री खिम्वदेवी-वरदीवदेवी अथवा कीलपी नामा थी। इनके क्रमशः जेहड़, हेमचंद्र, कुमार-

---

१. अर्बुदप्राचीन जैन लेख सन्दोह-लेखांक ३५०, ३५५.

जैन पुस्तक प्रशस्ति संग्रह पृ० २९ पृ० ३२.

श्री प्रशस्ति संग्रह प्रथम भाग (ताड़ पत्रीय) ता० प० ५० पृ०४८.

पाल और पासदेव ये चार पुत्र थे। गोसल का विवाह गुणदेवी नामा कन्या से हुआ था। इनके हरिचन्द्र और देमती नामा एक पुत्र और एक पुत्री थी।

श्रेष्ठि नेमड़ के कुटुम्ब में सदा धर्म का प्रकाश रहता था। समस्त कुटुम्ब जिनेश्वरदेव एवं धर्म गुरुओं का परम भक्त था। दान, शील, तप एवं भावना-धर्म के इन चार सिद्धान्तों पर समस्त कुल का जीवन ढ़ला हुआ था। प्रतिदिन कोई-न-कोई उल्लेखनीय धर्मकृत्य तथा साहित्य सेवा सम्बन्धी कार्य होते ही रहते थे। धर्म एवं साहित्य-सम्बन्धी कार्यों का उल्लेख निम्नवत् है :—

धर्मकार्य

प्राग्वाटकुलशिरोमणि मंत्री भ्राता महामात्य वस्तुपाल एवं दण्डनायक तेजपाल द्वारा श्री अर्बुदगिरि के ऊपर देवलवाड़ा ग्राम में श्री नेमिनाथचैत्य नामक लूणसिंह वसति में श्रेष्ठि नेमड़ के वंशजों ने दण्डकलशादियुक्त देवकुलिका संख्या ३८ और ३९ वि० सं० १२९१ के मार्गमास में विनिर्मित करवाईं तथा उक्त दोनों देवकुलिकाओं में ६ प्रतिमाए सपरिकर-प्रत्येक कुलिका में तीन-तीन प्रतिमा नागेन्द्रगच्छीय श्री विजयसेनसूरि द्वारा वि० सं० १२९३ मार्ग शीर्ष शुक्ला १० को प्रतिष्ठित करवाकर निम्नवत् विराजमान कीं।[1]

श्रेष्ठि सहदेव ने अपने पुत्र षेढ़ा और गोसल के श्रेयार्थ तथा जिनचन्द्र ने स्व एवं स्वमातृ के श्रेयार्थ श्री सम्भवनाथ विम्ब बनवाया।[2]

श्रेष्ठि देवचन्द्र ने अपनी माता चाहिणी के श्रेयार्थ श्री आदिनाथ विम्ब करवाया।[3]

---

१. अर्बुद प्राचीन जैनलेख सन्दोह लेखांक ३५०, ३५५.
२. अ० प्रा० जै० ले० सं० लेखांक ३४५.
३. ,, ,, ,, ,, ,, ,, ३४६

श्रेष्ठि वीरदेव देवकुमार और हालू इन तीनों भ्राताओं ने अपने और अपनी माता जाल्हणदेवी के कल्याणार्थ श्री महावीर-स्वामी की प्रतिमा बनवाई। ४

श्रेष्ठि सहदेव ने देवकुलिका संख्या ३८ दण्ड ध्वज-कलशादि सहित विनिर्मित करवा कर उपरोक्त तीनों प्रतिमायें उसमें संस्थापित करवाई। और भगवान संभवनाथ के पांचों कल्याणकों का लेखपट्ट तैयार करवा कर लगवाया। ५

श्रेष्ठि धनेश्वर और लाहड़ ने अपने, अपनी माता नायकी और अपनी स्त्रियों के कल्याणार्थ श्री अभिनंदन प्रतिमा बनवाई।६

श्रेष्ठि लाहड़ ने अपनी स्त्री लक्ष्मी के श्रेयार्थ श्री नेमिनाथ बिंब बनवाया। ७

जिनचन्द्र, धनेश्वर और लाहड इन तीनों ने अपनी माताअ बधू हरियाही (हर्षिणी) के श्रेयार्थ देदकुलिका दण्डकलशादियुतों संख्या ३९ विनिर्मित करवा कर उसमें सपरिकर प्रतिमायें उक्त अभिनंदन, नेमिनाथ और शान्तिनाथ भगवान कीं संस्थापित कीं। भगवान अभिनंदन स्वामी के पांचों कल्याणकों का लेखपट्ट उत्कीर्णित करवा कर लगवाया। ८

---

(४) अ० प्रा० जै० लेखसंदोह लेखाङ्क ३४७

(५) .... ३५१.

(६) ३५३

(७) ... ... ३५४.

(८) ... ... ३५५, ३५६.

श्री शत्रुञ्जय तीर्थ, गिरनारतीर्थ,अबुंदतीर्थ, पाटण, लाटापल्ली (लारडोल), पालनपुर आदि भिन्न २ स्थानों में जो नेमड के वंशजों ने तीर्थ कार्य किए वह निम्न प्रकार हैं:—

१- शत्रुंजय—महा० तेजपाल द्वारा विनिर्मित श्री नंदीश्वरद्वीप नामक चैत्यालय की पश्चिम दिशा के मण्डप में दण्डकलशादि युक्त एक देवकुलिका बनवाई और श्री आदिनाथविम्ब प्रतिष्ठित करवाया

२—शत्रुंजय—महा० तेजपाल द्वारा विनिर्मित श्री सत्यपुरीय महावीरस्वामी-जिनालय में एक जिन प्रतिमा और गवाक्ष।

३—शत्रुंजय —एक अन्य देवकुलिका में दो गवाक्ष। एक पाषाण-जिन प्रतिमा और एक धातु -चौबीशी।

(४) शत्रुंजय-तीर्थ के एक मन्दिर के गूढ़मण्डप के पूर्व द्वार में एक गवाक्ष, उसमें दो जिन बिम्ब और गवाक्ष के ऊपर श्री आदिनाथ भ० का एक विम्ब!

(५) गिरनारतीर्थ-श्री नेमिनाथ के पादुकामण्डप में एक गवाक्ष और श्री नेमिनाथ-विम्ब।

(६) गिरनारतीर्थ-महामात्य वस्तुपाल टूंक में श्री आदिनाथ प्रतिमा के आगे के मण्डप में एक गवाक्ष और एक भगवान् नेमिनाथ बिम्व।

(७) जावालीपुर (जालोर-मारवाड़)—श्री पार्श्वनाथ मन्दिर की भमती में श्री आदिनाथ प्रतिमा मय एक देवकुलिका।

(८) तारंगातीर्थ—श्री अजितनाथ मन्दिर के गूढ़मण्डप में आदिनाथ प्रतिमायुक्त एक गवाक्ष।

(९) अणहिल्लपुर पत्तन-हस्तिबाव के निकट के श्री सुविधिनाथ मन्दिर का जीर्णोद्धार और उसमें भ० सुविधिनाथ का नवीन बिम्ब।

(१०) बीजापुर—एक जिनालय में दो देवकुलिका और उन दोनों में भ० नेमिनाथ और भ० पार्श्वनाथ के अलग अलग बिम्ब।

(११) बीजापुर—उक्त जिनालय के मूलगर्भगृह में दो कवली-खत्तक-गवाक्ष और उनमें एक में आदिनाथ और एक में मुनि सुव्रत बिम्ब।

(१२) लाटापल्ली—सम्राटकुमारपाल निर्मित श्री कुमार-विहार में जीर्णोद्धारकार्य और श्री पार्श्वनाथ प्रतिमा के सन्मुख के मण्डप में भ० पार्श्वनाथ बिम्ब और एक गवाक्ष।

(१३) पह्लादनपुर (पालणपुर) श्री पाल्हण विहार में श्री चन्द्रप्रभस्वामी के मण्डप में दो गवाक्ष।

(१४) पह्लादनपुर—उक्त विहार-जिनालय में ही श्री नेमि-नाथ विम्ब के आगे के मण्डप में श्री महावीर प्रतिमा।

उपरोक्त सर्व तीर्थ, मन्दिर, नगर सम्बन्धी सर्व कार्य नेमड़, जयदेव, सहदेव और उनके पुत्रों ने समुदाय रूप से करवायें है और नागेन्द्रगच्छीय श्री विजयसेन सूरि-जी ने प्रतिष्ठा कार्य किया

है। उक्त सुकार्यों के करवाने में श्रेष्ठि लाहड़ का नाम विशेषतः उल्लिखित किया गया मिलता है।

(१५) जावालीपुर—श्री पार्श्वनाथ मन्दिर की भमती में गवाक्ष।

(१६) लाटापल्ली—श्री कुमार विहार-मन्दिर की भमती में दण्डकलशादि युक्त एक देवकुलिका और भ० श्री अजितनाथ की प्रतिमा।

(१७) लाटापल्ली—उपरोक्त विहार में ही दो कायोत्सर्गस्थ प्रतिमायें—१ श्री शांतिनाथ और २ श्री अजितनाथ।

(१८) चारूप—अणहिल्लपुर पत्तन के निकट के ग्राम चारोप में छः वस्तु वाला जिन मन्दिर गूढ़मण्डप और श्री आदिनाथ बिम्ब।

ये उपरोक्त कार्य श्रेष्ठिजिणचन्द्र की पत्नी चाहिणी देवी के पुत्र सं० देवचन्द्र ने अपने पिता, माता एवं स्वश्रेयार्थ करवाये।

आगम-सेवा

जैन ग्रन्थों की प्रतियां लिखवाने में श्रेष्ठि लाहड़ का उत्साह अधिक रहा है जैसा निम्न पंक्तियों से स्वतः स्पष्ट हो जाता है। आगम-सेवा सम्बंधी अधिक प्रेरणा इस कटम्ब को तपागच्छीय श्री देवेन्द्रसूरि, विजयचन्द्रसूरि और उपाध्याय देवभद्रगणि के धर्मोपदेशों से अधिक प्राप्त होती रही हैं और उनके फलस्वरूप भिन्न-भिन्न संवतों में स्वतंत्र रूप से और कभी-कभी अन्य श्रावक सज्जनों के

सम्मिलित रहकर कई ग्रन्थों की प्रतियाँ लिखवाकर पौषधशाला, भण्डार एवं मुनियों को भेंट की हैं।

(१) 'श्री लिङ्गानुशासन' की प्रति वि० सं० १२८७ में बीजापुर में श्रेष्ठि लाहड़ ने अन्य श्रावक सा० रत्नपाल, श्रे० वील्हण और ठ० आसपाल के द्रव्य-सहाय से लिखवाई।[१]

(२) 'देववंदनक' आदि प्रकरण—वि० सं० १२९० माघ कृ० १ गुरुवार को बीजापुर में श्रेष्ठि सहदेव के पुत्र सा षेढ़ा (षेटा) और गोसल ने स्वमातृ सौभाग्य देवी के श्रेयार्थ पं० अमलेण द्वारा लिखवाई। लिखवाने में श्रेष्ठि लाहड़ का सहयोग था।[२]

(३) श्री नंदि अध्ययनटीका (मलयगिरीय) वि० सं० १२९२ वै० शु० १३ को बीजापुर में उपा० देवभद्रगणि, पं० मलयकीर्ति और पं० अजितप्रभगणी के उपदेश से श्रे०लाहड़ और अन्य श्रावक सा०रत्नपाल, ठा० विजयपाल, श्रे० वील्हण, महं० ज़िणदेव, ठ० आसपाल, श्रे० सोल्हा, ठ० अरसिंह ने सम्मिलित द्रव्य-सहाय से मोक्षफल की प्राप्ति की शुभेच्छा से समस्त चतुर्विध संघ के पठनार्थ लिखवा कर समर्पित की।[३]

(४) श्री आवश्यक बृहद्वृत्ति—वि० सं० १२९४ पौष शु० १० मंगलवार को स्व एवं समस्त कुटुम्ब के श्रेयार्थ सा० लाहड़ ने लिखवाई।[४]

---

(१) प्र० सं० ता० प्र० ८७. (२) प्र० सं० ता० प्र० ६८, (३) ८४, (४) ५२,

(५) श्री त्रिषष्टि (पर्व २-३)—वि० सं० १२९५ आश्विन-कृ० २ रविवार को बीजापुर में उपा० देवभद्रगणि, पं० मलय कीर्त्ति, पं० फूलचंद, पं० देवकुमारमुनि, नेमिकुमारमुनि आदि के सदुपदेश से श्रेष्ठि लाहड़ और अन्य श्रेष्ठि ठ० आसपाल, श्रे० वीलहण ने समस्त साधुगण,श्रावकों के पठन वाचनार्थ एवं कल्याणार्थ प्रति लिखवाई। ५

(६) श्री पाक्षिक चूर्णिवृत्ति —वि० सं० १२९६ वै० शु० ३ गुरूवार कों वीजापुर में उपा० विजयचंद्र के सदुपदेश से सा० नेमड़ के तीन पुत्र सा० राहड़, सा० जयदेव और सा० सहदेव ने अपने पुत्रों के सहित श्री चतुर्विध संघ के पठन-वाचनार्थ लिखवा कर स्वश्रेयार्थ अर्पित की। ६

(७) श्री भगवतीसूत्रवृत्ति—वि०सं० १२९८ मार्ग सु० १३ सोमवार को बीजापुर में श्री देवचन्दसूरि, श्री विजयचन्दसूरि के सदुपदेश से श्री लाहड ने देवचन्द्र, जिनचन्द्र, धनेश्वर, सहदेव' षेढ़ा, सं० गोसल आदि परिजनों के सहित चतुर्विध संघ के पठन-वाचन के लिये लिखवाई। ७

(८) श्री शब्दानुशासन बृहद्वृत्ति—वि० सं० १२९८ द्वि० भाद्र कृ० ७ गुरूवार को बीजापुर में उक्त बृत्ति के प्रथम खण्ड को समस्त श्रावकों द्वारा लिखवाई। इसमें नेमड़ के वंशजों का अवश्य

---

(५) ३७, ५७, जैन पुस्तक प्रशस्ति संग्रह प्र० १७७ पृ० १२१, (६) २५, (७) ५४

सहयोग रहाहोगा।

(९) श्री शब्दानुशासन वृहद्वृत्ति—वि० सं० १३०० में वीजापुर में श्रे० लाहड़ ने अन्य श्रावक सा० रत्नपाल, श्रे० वील्हरा, सा० आसपाल के द्रव्य-सहाय से लिखवाई।[९]

(१०) श्री उपासकादिसूत्रवृत्ति–वि० सं० १३०१ फा० कृ० १ शनिश्चर को वीजापुर में श्री देवेन्द्रसूरि, विजयचन्द्रसूरि, उपा० देवभद्रगरिण के सदुपदेश से सा० नेमड़ के तीनों पुत्रों सा० राहड़, सा० जयदेव, सा० सहदेव ने अपने २ पुत्रों के सहित श्री चतुर्विध संघ के पठन वांचन के लिये स्वश्रेयार्थ लिखवा कर अर्पित की[१०]

(११) श्री आचारांगचूर्णि—वि० १३०३ ज्ये० शु० १२ को स्व एवं समस्त स्वकुटुम्ब के श्रेयार्थ सा० लाहड़ ने लिखवाई।[११]

(१२) श्री ज्ञाता धर्मकथासूत्र (सवृत्ति)—वि० सं० १३०७ में स्व एवं समस्त स्वकुटुम्ब के श्रेयार्थ श्रे० लाहड़ने लिखवाई।[१२]

(१३) श्री व्यवहारसूत्र सवृत्ति (खण्ड २,३)—वि० सं० १३०९ भाद्र० शु० १५ को श्रे०लाहड़ ने समस्त स्वकुटुम्ब के सहित स्व एवं समस्त कुटुम्ब के श्रेयार्थ लिखवाई।[१३]

उपर्युक्त धर्म कृत्यों एवं साहित्य-सेवा कार्यों से सुस्पस्ट है कि मूलपुरुष वरदेव नागौर(राजस्थान) का निवासी था। उसने अथवा

---

(८) प्र० सं० प्र० ६२' (९) ६३,(१०) ५५.(११) ५३,१२) ५१ (१३) २४, ५०

उसके पुत्र आसदेव या पौत्र नेमड़ ने नागौर से पालनपुर में वास किया और फिर अंत में बीजापुर में स्थिर बास किया। महामात्य वस्तुपाल और तेजपाल के साथ इनका स्नेह-सम्बंध और गाढ़ मैत्री थी। तभी मंत्री भ्राताओ ने नेमड़ के वंशजों को अपने द्वारा नि०-जिनालयों में द्रव्य व्यय करने दिया क्योकि जहां २ मंत्री भ्राता-ओं ने विपुल द्रव्य व्यय किया है वहाँ २ उन्होंने भी कुछ द्रव्य प्रायः व्यय कियाहै। इसमें इन को लाभ लेने देने से सुष्पस्ट है कि दोनों कुलों में गाढ़ स्नेह और मैत्री थी। साथ ही दोनों कुलों में गाढ़ सम्बंध पर एवं धर्म और साहित्य-सेवा कार्यों में व्यय किये गये द्रव्य के अनुमान से नेमड़ का कुल अत्यन्त गौरवशाली, धनी और दूर २ तक प्रसिद्ध था, सिद्ध होता है। नेमड़ के प्रपौत्रों में दो के नाम वीरधवल और भीमदेव था। ये नाम उस समय के महान् गुर्जर शासकों के नाम थे। यह नाम देने का साहस करना कुल का शक्ति सम्पन्न' वैभवशाली' गौरवशाली होना स्वतः सिद्ध कर देता है और वैसे वीरधवल और भीम देव थे भी महान् प्रतिभाशाली। इन दोनों ने श्री देवेन्द्रसूरि के द्वारा वि० सं १३०२ में उज्जैन में दीक्षा ग्रहण की थी और आगे जाकर ये क्रमशः विद्यानंदसूरि और धर्मघोषसूरि नाम से बड़े प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं। इनका परिचय स्वतंत्र प्रकरण से दिया जायगा।

वीर धवल और भीमदेव के ज्येष्ठ भ्राता देवचन्द्र ने अपने विपुल द्रव्य से तीर्थों की संघ यात्रायें की थी और विपुल द्रव्य

व्यय करके स्वधर्मी बंधुओं का भारी आदर-सत्कार किया था वह संघपति पद से अलंकृत हुआ था।

श्रे० लाहड़ नायिकी, राहड़ की द्वितीय भार्या, का पुत्र था। यह शास्त्र-श्रवण में बड़ी रुचि रखता था और ग्रंथों की प्रतियां लिखवाने में अपने द्रव्य का व्यय करना सफल मानता था। ऊपर के प्रत्येक तीर्थ सेवा एवं साहित्य-सेवा कार्य में श्रे० लाहड़ का नाम अवश्य आया है। इससे स्पष्ट है कि वह उस समय के महान् जिनेश्वर भक्तों में, ज्ञानोंपाशकों में, गुरुभक्तों में अग्रणी था।

श्रेष्ठि नेमड़ के गौरवशाली वंश का वृक्ष

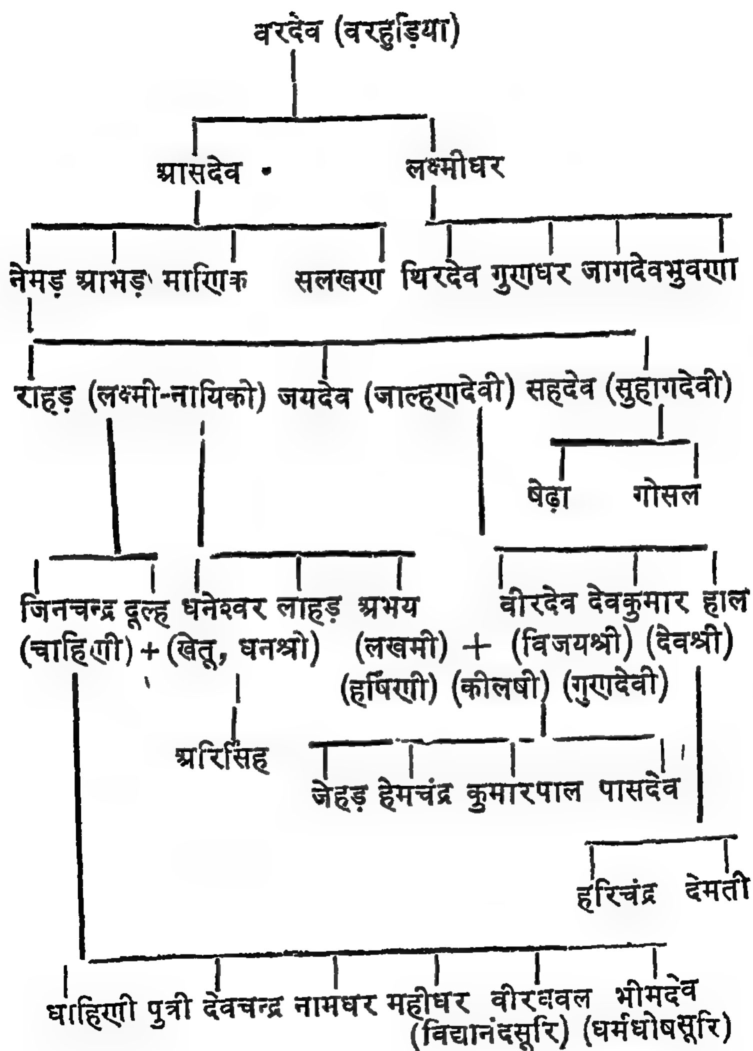
(आगे के पृष्ठ पर देखिये)

---

१. अ० प्रा० जैं० सं० सं० लेखांङ्क ३५०, ३५५.

२. जै० पु० प्र० से० प्र० २६ पृ० ३२.

३. श्री प्रशस्ति संग्रह प्रथम भाग (ताड़पत्रीय) ता० प्र० ५०. पृ० ४४.



वरदेव (वरहुड़िया)
आसदेव
लक्ष्मीधर
नेमड़ आभड़ माणिक सलखण थिरदेव गुणधर जागदेव भुवण
राहड़ (लक्ष्मी-नायिको) जयदेव (जाल्हणदेवी) सहदेव (सुहागदेवी)
षेढ़ा गोसल
जिनचन्द्र दूल्ह धनेश्वर लाहड़ अभय वीरदेव देवकुमार हाल
(चाहिणी) + (खेतू, धनश्री) (लखमी) + (विजयश्री) (देवश्री)
(हर्षिणी) (कीलषी) (गुणदेवी)
अरिसिंह
जेहड़ हेमचंद्र कुमारपाल पासदेव
हरिचंद्र देमती
धाहिणी पुत्री देवचन्द्र नामधर महीधर वीरधवल भीमदेव
(विद्यानंदसूरि) (धर्मघोषसूरि)

तपागच्छीय श्रीमद विद्यानन्दसूरि एवं श्री धर्मघोषसूरि

इसके पूर्व पृष्ठों में ही हम पल्लीवाल ज्ञातीय प्रसिद्ध नेमड़ और उसके वंशजों का यथाप्राप्त वर्णन कर चुके हैं। श्रेष्ठि नेमड़ के पुत्र राहड़ के पुत्र के पुत्र जिनचन्द्र कीं चाहिणी नामा धर्म परायणा सुशीला स्त्री से एक कन्या एवं पांच पुत्र हुए थे। चौथा और पांचवां पुत्र वीरधवल और भीमदेव थे। नेमड़ का समस्त परिवार दृढ़ जैनधर्मी, धर्म कर्म परायण, गुरुभक्त एवं संस्कार पवित्र था। यह नेमड़ के इतिहास से सिद्ध हो जाता है।

ऐसे जिन शासन सेवक नेमड़ के कुल में इन दो-वीरधवल और भीमदेव ने संसार की असारता का विचार करके भव सुधारनेकी शुभ भावनाओं केउदय से आकर्षित होकर तपागच्छीय देवभद्रसूरि, विजय चन्द्रसूरि और देवेन्द्रसूरि की आम्नाय में वि० सं० १३०२ में उज्जैन नामक प्रसिद्ध एवं ऐतिहासिक नगरी में भागवती दीक्षा ग्रहण की और श्री वीर धवल मुनि विद्यानन्द और श्री भीमदेव धर्मकीर्ति नाम से क्रमशः विश्रुत हुए।

विद्यानन्दसूरि-दोनों भ्राताओं ने गुरु सेवा में रह कर कठिन संयम साध कर उत्तम चारित्र प्राप्त किया एवं शास्त्राभ्यास करके प्रशंसनीय विद्वत्ता प्राप्त की। विद्यानन्दसूरि ने 'विद्यानन्द' नामक

व्याकरण बनाया। श्रीदेवेन्द्रसूरि द्वारा रचित नव्य कर्म ग्रंथों का श्री धर्मघोषसूरि (धर्मकीर्ति) के साथ रह कर सम्पादन किया। विद्यानन्द व्याकरण एवं नव्य-कर्म ग्रंथों का सम्पादन ये दो कार्य ही इनको उद्‌भट विद्वता का स्पष्ट परिचय करा देने को पर्याप्त है। वि० सं-१३२३(क्वचित १३०४) में इन दोनों भ्राताओं के तप, तेज संयम एवं शास्त्राभ्यास विद्वत्तादि से प्रसन्न होकर श्री विद्यानन्द मुनि को सूरि पद और धर्मकीर्ति को उपाध्याय पद प्रदान किया गया। वि० सं-१३२७ में नव्य कर्म ग्रंथ-कर्त्ता श्री देवेन्द्र सूरि का मालवा में स्वर्गवास हुआ। उस दिन के ठीक तेरह दिवस पश्चात् श्री विद्यानन्द सूरि भी स्वर्गवासी हुए। और उपाध्याय धर्मकीर्ति धर्मघोषसूरि नाम से पट्ट पर बिराजे। धर्मघोष सूरि-ये आचार्य चौदहवीं शताब्दी के महान् प्रखर ज्योतिर्धर आचार्यों में से थे। सम्राट,राजा, सामन्त,संघपति नगर श्रेष्ठ एवं विद्वान् गण इनका अत्यन्त आदर करते थे। अणहिल्लपुर पत्तन के गुर्जर सम्राटों पर, माण्डव के शासकों पर इनका अच्छा प्रभाव था और उनसे गाढ़ मैत्री थी। गुर्जर मालव आदि धर्म एवं साहित्य के प्रसिद्ध क्षेत्रों में इनका बड़ा सम्मान था। इन्होंने देव पत्तन में कपर्दि नामक यक्ष को प्रतिबोध देकर उसको दृढ़ जैन धर्मी अधिष्ठायक बनाया था। उज्जैन में मोहन बेली से भ्रमित अपने एक शिष्य को मंत्रबल से स्वस्थ किया था। एक समय

(१) प्र० सं० ४८, पृ० ४३, ५० पृ० ४४,
(२) देखिये 'नेमड़ और उसके वंशजो के धर्म कार्य,

फिर उज्जैन में किसी प्रतिष्ठित जैन धर्म विरोधी योगी को योगिक क्रियाओं से परास्त करके उसको आधीन किया था और जैन धर्म का भारी प्रभाव प्रसारित किया था। ऐसे कई चमत्कार पूर्ण उल्लेख आपके सम्बंन्ध में प्राप्त होते हैं।

माण्डवपुर अथवा मण्डपदुर्ग तीर्थ का निवासी उपकेश-ज्ञातीय प्रसिद्ध पेथड़ आपका परम भक्त था और श्रेष्ठी पेथड़ ने आपके सदुपदेशों से प्रेरणा एवं कई बार तत्वावधानता में बड़े बड़े धर्म कार्य-तीर्थ यात्रा, संघसम्मान, तीर्थ-मंदिर साहित्य सम्वंन्धी सेवाओं के भारी भारी व्यय वाले कार्य किये थे। पेथड़ और उसका वंश आपका सदा अनुरागी आज्ञावर्ती ही रहा। यह पेथड़ के इतिहास से स्पष्ट सिद्ध होता है। माण्डवगढ़ में बसने के पूर्व पेथड़ विद्यापुर -वीजापुर में रहता था। एक वर्ष आप श्री ने वीजापुर में चातुर्मास किया। आपके व्याख्यानों एवं आपकी गंभीर विद्वता और महान् चारित्र का पेथड़ पर अतिशय प्रभाव पड़ा और फलतः वह आपका परम भक्त हो गया। जव पेथड़ ने अनन्त धन उपार्जित कर लिया और कुछ कारणों से वीजापुर का त्याग करके माण्डवगढ़ में आकर बस गया था, तव से उसने आपकी प्रेरणा एवं उपदेशों से जो धर्म और साहित्य की सेवायें की हैं वे जैन इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अति गौरव के साथ स्मरण की जाती हैं। पेथड़ ने आप के सदुपदेशों से मालवा, गुर्जर राजस्थान के सुदूर एवं भिन्न २ ऐतिहासिक एवं प्रसिद्ध नगर तीर्थ राजधानियों

में ८४ जिन प्रासाद विनिर्मित करवाये और अनन्त द्रव्य व्यय करके उनको दण्ड-स्वर्ण कलशादि ध्वजा-पताकाओं से प्रतिष्ठित करवाये। सात प्रसिद्ध स्थानों में ज्ञान-भण्डार संस्थापित किये। एक वर्ष उसने आपसे ग्यारह (११) अगों का श्रवण प्रारम्भ किया था जब पांचवा अंग 'भगवती' का श्रवण प्रारम्भ हुआ वह प्रत्येक श्लोक पर एक स्वर्ण-मोहर चढ़ाता चला गया। इस प्रकार उसने इस प्रसंग पर ३६००० छत्तीस सहस्त्र स्वर्ण मोहरें चढ़ाई थी। आपके उपदेश एवं सम्मति-आदेश से उसने उक्त विपुल धनराशि की शास्त्रों की प्रतियां लिखवा कर मृगकच्छादि स्थानों में संस्थापित करवाने में व्यय की।

पेथड़ का पुत्र झांझण भी पिता के सदृशही आपका अनुरागी था। उसने भी आपके उपदेश से विपुल द्रव्य धर्म के सात क्षेत्रों पर समय-समय पर व्यय किया। आपकी निश्रा में संघ यात्रायें कीं, अनेक स्थानों में छोटे-बड़े जैन मंदिर बनवाये।

आपश्री उच्च कोटि के विद्वान् भी थे। देवेन्द्रसूरि रचित नव्य कर्म ग्रंथों का आपने संशोधन किया था। उनके द्वारा रचित स्त्रोपज्ञ टीका का भी आपने संशोधन किया। आपने कई नवीन ग्रंथ लिखे जिनकी यथा प्राप्तसूची निम्नप्रकार है :—

१—संघाचाराख्य भाष्यवृत्ति २ सुअधमेतिस्तव,

जै० साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, परिच्छेद ५८० और ५८३.
जै० गुर्जर कवि भाग २. पृ० ७१६, ७१७.

३—कायस्थिति, ४ भवस्थितिस्तवन

५—चतुर्विंशति पर जिनस्तव २४.

६—शास्ताशर्मेत्ति नाम का आदि स्तोत्र

७—देवेन्द्ररनिशम् नाम का श्लेषस्तोत्र

८—युयंयुवा इति श्लेसस्तुतयः

९—जयऋषभेति आदि स्तुत्यादयः

इस प्रकार साहित्य एवं धर्म की प्रभावना, प्रसिद्धि करते हुए आपका स्वर्गवास वि० सं० १३५७ में हुआ। प्राचीन जैनाचार्यों में विद्वत्ता एवं धर्म-प्रचार-प्रसार की दृष्टियों से आपका स्थान बहुत ऊंचा है।

यति परम्परा

पल्लीवालों के मन्दिरों में विद्वान यतियों की परम्परा भी हुई जो अधिकतर विजयगच्छ में से हुई। उन में से कुछ यतियों की नामावलि इस प्रकार है :—

श्री मुलतानचन्द्र जी महाराज-वसुआ में

श्री मूलचन्द्र जी महाराज- सांते में

श्री रामचन्द्र जी महाराज - करौली में

श्री मेवाराम जी महाराज - अलवर में

श्री गोविन्दचंद्र जी ,, - हिंडौन में

श्री घनश्यामदासजी ,, - आगरा (धूलियागंज मोहल्ले में)

श्री मुरलीधर जी ,, - वैर में

श्री मुरलीधर जी " - मिढ़ाकुर में कठयारी में इन्ही का अधिकार था

श्रीपूज्यजीं महाराज - डीग में
श्री हुकमचन्द्र जी ,, - भरतपुर में
श्रींचन्द्र जी ,, - भरतपुर में
श्री चन्दनमल जी ,, - बयाना में

भरतपुर में जहाँ पर श्वेताम्वर पल्लीवाल मंन्दिर है वह भी जती मोहल्ला के नाम से ही प्रसिद्ध है।



पल्लीवालों के कुछ रत्न

श्रेष्ठि श्रीपाल और उनका वंश

तेरहवी शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में भृगुकच्छ में पल्लीवाल ज्ञातीय श्रेष्ठि सोही रहता था। वह मुक्तात्मा, श्रावकाग्रणी, ज्ञानी, शान्त प्रकृति और महान् तेजस्वी था। उसकी स्त्री सुहवादेवी निर्मल बुद्धिमती थी। उनके पासणाग नाम का एक ही पुत्र था। पासणाग की धर्मपरायणा स्त्री पऊश्री थी। इन के तीन पुत्र साजण, राणक और आहड़ तथा दो पुत्री पद्मी और [illegible]सल थीं। राणक वालवय में ही जिनेश्वर का स्मरण करता हुआ स्वर्गगति को प्राप्त हो गया था।

साजण निर्मलात्मा, सत्यवक्ता एवं शीलवान् था। सहजमती नाम की उसकी पतिव्रता पत्नी थी। इनके रतधा नाम की एक पुत्री और मोहण, साल्हण नाम के दो पुत्र थे।

आहड़ की पत्नी का नाम चाँदू था, जो सचमुच कुल की उज्वला चन्द्रिका थी। इनके पांच सन्तानें हुई-आशा, श्रीपाल, धांधक, पद्मसिंह नाम के चार पुत्र और ललतू नामा एक पुत्री।

आशा की स्त्री आशादेवी थी। जैत्रसिंहादि इनके पुत्र थे। श्रीपाल की पत्नी का नाम दील्हुका था और वील्हा नाम का इनके बुद्धिमान पुत्र था। धांधक की स्त्री रुक्मिणी थी। पद्मसिंह की स्त्री का नाम लक्ष्मी था और रत्नादि इनके पुत्र थे। ललतू धर्म

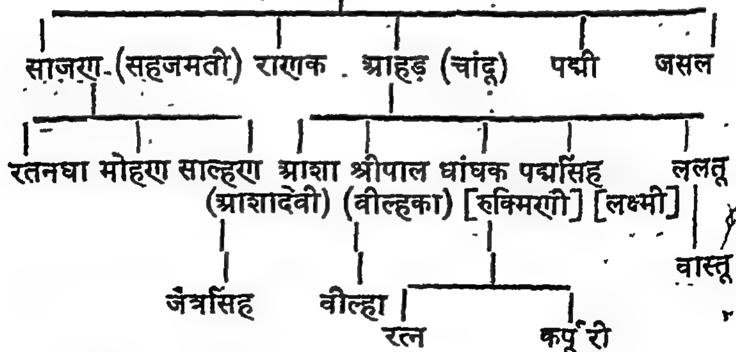
कर्मानुरक्ता थी। उसके वास्तू नाम की एक कन्या थी। पद्मसिंह को कन्या कपूंरी ने और वास्तू ने गणिनी श्रीकीर्ति श्री के पास में साध्वी-दीक्षा ग्रहण की और क्रमशः भावसुन्दरी, मदन सुन्दरी साध्वी नाम से प्रसिद्ध हुई।

धर्मात्मा, मोहविगत, परोपकार परायण, गुरूभक्त श्रेष्ठि श्रीपाल ने कुलप्रभगुरू के उपदेश को श्रवण करके स्वमाता-पिता के 'श्रेयार्थ अजितनाथादि चरित्र' पुस्तक को वि० सं० १३०३ कार्तिक शुक्ला १० रविवार को श्री भृगुकच्छ में ही ठा० समुधर से लिखवाया।

श्रेष्ठि श्रीपाल का वंशवृत्त

सोही (सुहवादेवी)

पासणाग (पऊश्री)



जै० पु० प्र० सं० प्र० ११. पृ० १४.

पल्लीवाल ज्ञातीय स्त्रीकुल भूषण श्राविका सूल्हणदेवी और उसका परिवार

वि० की तेरहवीं शताब्दी में पवित्रात्मा वीकल नामक पल्ली-वालज्ञातियश्रेष्ठ रहता था। पवित्रकर्मा रत्नदेवी उसकी पत्नी थी। श्राविका सूल्हणदेवी इनकी प्यारी पुत्री थीं। सूल्हणदेवी देव पूजा गुरु-सुश्रुषा एवं धर्मकार्य में नित्य व्यस्त रहा करती थी। उसका विवाह वज्रसिंह नामक पल्लीवाल ज्ञातिय एक सुन्दर एवं बुद्धिमान युवक के साथ हुआ था। वज्रसिंह का कुल परिचय निम्नवत है: —

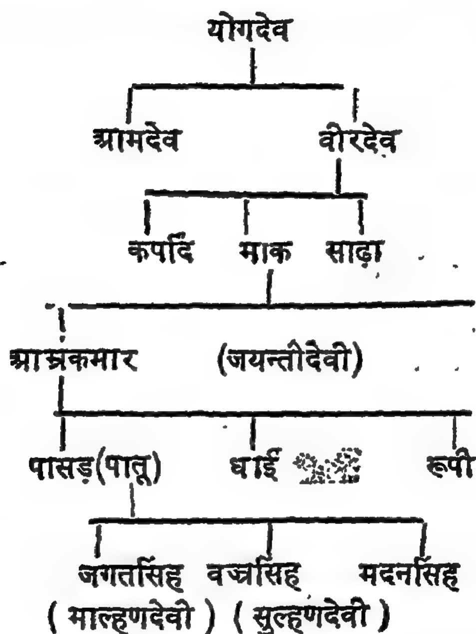
पल्लीवाल ज्ञातिय योगदेव नामक एक सद्गुणी श्रावक वि० बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी में हो गया है। योगदेव के आमदेव और वीरदेव दो पुत्र थे।

वीरदेव के तीन पुत्र थे-कपर्दी, माक और साढ़ा। साढ़ा का पुत्र आम्रकुमार था, आम्रकुमार की पत्नी का नाम जयन्ती था। आम्रकुमार के पासड़ नाम का पुत्र और धाई तथा रूपी नामा पुत्रियाँ हुई। पासड़ की पत्नी पातू नामा थी। पातू की रत्नगर्भा कुक्षी से जगतसिंह, वज्रसिंह और मदनसिंह नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। जगतसिंह की स्त्री माल्हणदेवी और वज्रसिंह की पत्नी उपरोक्त सूल्हणदेवी थी।

सूल्हणदेवी श्री जयदेव सूरि की परम भक्ता थी। श्रीदेवसूरि

के उपदेश से उसने अपनी सासू पातूजी के श्रेयार्थ "उपमितिभव-प्रपञ्चा कथा सारोद्धार" पुस्तक लिखवाई।

श्राविका सुल्हणदेवी का वंश वृक्ष



---

(१) जै० पु० प्र० सं० प्र० ७० पृ० ६८-६६
(२) प्र० सं० प्र० ६३ पृ० ५८-५६.

पल्लीवालज्ञातिय श्राविका सांतू और उसका पितृ परिवार

अनुमानतः वि० तेरहवीं शताब्दी में पल्लीवालज्ञातीय सद्‌गुणी धर्मात्मा श्रीचन्द्र नामक श्रावक रहता था। उसकी स्त्री माइं नामा अत्यन्त धर्मपरायण और देव,गुरु की परम भक्ता थी। इन के साभड़ और सामंत नामक दो महागुणी पुत्र एवं श्रीमती और सान्तू नामा दो पुत्रियां थी। श्रीमती बालवय से ही धर्मानुरागिनी थी। उसने श्रीजयसिंहसूरि के पास में दीक्षा ग्रहण की। उसकी बहिन सांतू ने 'आचारांगसूत्र' प्रति लिखवाकर अपनी बहिन श्रीमती गणिनी को भेंट की और श्रीमती गणिनी ने उक्त प्रतिको श्री धर्मघोषसूरि को वाचनार्थ अर्पित की। [1]

पल्लीवालज्ञातीय साधु गणदेव

प्राचीन कालमें पल्लीवालज्ञातीय श्रे० पूना के पुत्र बोहित्थ के पुत्रसुधार्मिक श्रावक गणदेव ने त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित के तृतीय खण्ड को लिखवा कर श्री स्तम्भनतीर्थ की पौषधशाला में वाचनार्थ पठनार्थ अर्पित किया। [2]

पल्लवालज्ञातीय ठक्कुर धंध संतानीय

प्राचीन कालमें वीरपुर नामक अति धनी नगर में पल्लीवाल

ज्ञातीय महा महिमाशाली श्रीमंत ठक्कुर धंध नामक हो गया है। वह बुद्धिमान् सर्वजन सम्मान्य था। रासलदेवी नामा उनकी उदार हृदया धर्मपत्नी थी। इनके किसी वंशज ने 'सार्द्धशतकवृत्ति' की प्रति लिखवाई। उक्त प्रति में प्रशस्ति का अधिक भाग नष्ट हो गया है, अतः लिखाने वाले का पूर्ण परिचय अनुपलब्ध रह जाता है।[३]

पल्लीवालज्ञातीय श्राविका लीलादेवी

वि० सं० १३२६ श्रावण शु० २ सोमवार को जब कि धवलक्कपूर में अर्जुनदेव का राज्य था और श्रीमल्लदेव महामात्य थे। उस समय उक्त दिवस को स्तम्भतीर्थ निवासिनी पल्लीवाल ज्ञातीय भण० लीलादेवी ने स्वश्रेयार्थ 'वर्धमान स्वामी चरित' की प्रति लिखवाई।[४]

—:०:—

(१) जै० पु० प्र० सं० प्र० ५५पृ० ५६.
(२) .... १०६पृ० ६५.
(३) .... १०३पृ०६४.
(४) ... ... २२७पृ० १२८,

पल्लीवाल ज्ञातीय श्रेष्ठि लाखण और उसका परिवार

विक्रमीय तेरहवीं शताब्दी के मध्य में स्तंभनपुर में पल्लीवालज्ञातिय श्रेष्ठि साढ़देव रहता था। उसकी स्त्री साढू महा शीलवती स्त्री थी। साढ़देव अत्यन्त विनयी, जिनेश्वरभक्त और अतिकीर्तिशाली था। साढ़देव के देसल नाम का लघु भ्राता था जिसके पद्मी नाम की विवेकी पत्नी थी। देसल भी अपने ज्येष्ठ भ्राता की भांति सत्यशीलवान् था।

साढ़देव के जाजाक, जसपाल नामक दो पुत्र और जानुका नामा एक पुत्री थी। जाजाक परम गुणी, निर्मल कीर्तिवंत एवं जिनेश्वर देव का अनन्य भक्त था। वैसी ही शील-गुणगर्भा धर्म परायणा, नित्यसुकर्मरता दानपुण्य तत्परा पतिपरायणा उसकी जयतु नामा स्त्री थी। इसके लाखण नामक एक ही पुत्र था जो अपने माता-पिता के सदृश ही पुण्यशाली, सुनीतिवान्, कुशल, क्षमाशील और महान् यशस्वी था।

जसपाल भी बुद्धिमान था। दानशीला संतुका नामा उसकी पत्नी थी। रत्नसिंह और धनसिंह नाम के इनके दो पुत्र थे।

जानुका जिसको जैन पुस्तक प्रशस्ति संग्रह में 'नाउका' करके

लिखा गया है अपनी अम्नाय में साध्वी बन गई थी और उसने उत्तम संयम पाल कर गुरुणीपद प्राप्त किया था।

लाखण की स्त्री का नाम रुक्मिणी था। रुक्मिणी दान देने में नित्य तत्पर रहती थी। दीनों के प्रति वह बड़ी दया रखती थी। इनके नरपति, भुवनपाल और यशोदेव नाम के तीन पुत्र हुए थे। ये तीनों पुत्र तीर्थ, गुरु और धर्म की महान् सेवायें करके अति प्रसिद्धि को प्राप्त हुए थे। जाल्हणदेवी और जासी नाम की दो पुत्रियाँ थी। ये दोनों पुत्रियाँ भी सधर्मकर्म निपुणा थीं।

नरपति के नायिकदेवी और गौरदेवी नाम की दो स्त्रियाँ थीं। गौरदेवी से उसको सामंतसिंह नाम का एक पुत्र प्राप्त हुआ था।

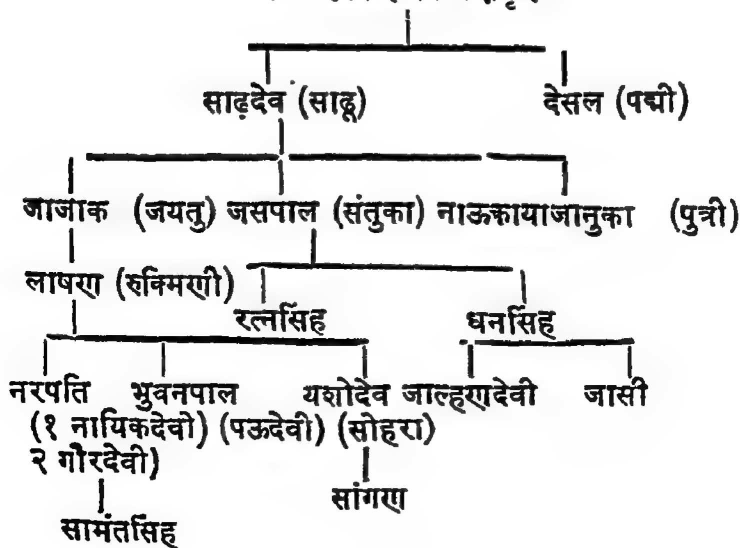
भुवनपाल की स्त्री पाउंदेवी थी, जो पृथ्वी मण्डल में अपने शीलरत्न के लिये विख्यात थी।

यशोदेव की पत्नी का नाम सोहरा था। इनके सांगण नामक प्रतिभावान् एक पुत्र था।

लाखण के नाना का नाम राजपाल, नानी का नाम राणीदेवी और मामा राणिग और वूटड़ि नामा थे। लाषण तीर्थयात्रा का प्रेमी, कुल प्रतिपालक, सज्जनों का सदा हित करने वाला, संसार की क्षणभंगुरता का समझने वाला, सदज्ञानी और शास्त्रों के प्रति सदा विनय, सम्मान रखने वाला, नित्य सुगुरु के दर्शन करनेवाला समाधि ध्यान का ध्याने वाला एक दृढ़ जैन धर्मी श्रावक था।

हरिभद्रसूरिकृत "समरादित्य कथा" जैन कथा-साहित्य में अत्यन्त विश्रुत कथा है। उसमें धर्म में मुख्य-मुख्य तत्त्व, सिद्धान्तों का अनुभवसिद्ध दर्शन् उपलब्ध होता है। शास्त्ररसिक श्रेष्ठि लाषण ने अपने पिता जाजाक और माता जयतुदेवी के पुण्यार्थ उक्त कथा की प्रति वि० सं० १२९९ में श्री रत्नप्रभसूरि के आदेश से लिखवाई और भावना भाई कि सर्वजगत् का कल्याण हो, सर्व-प्राणी परोपकारशील बनें, दोषों का विनाश हो और सर्वत्र संघ सुखी हो। इन भावनाओं के साथ उक्त प्रति का व्याख्यान गुरु श्री रत्नप्रभसूरि से सर्व संघ के लाभार्थ करवाया।

श्रेष्ठि लाषण का वंशवृक्ष



पल्लीवालज्ञातिय श्रे० तेजपाल

वि० सं १२६५ भाद्र० शु० ११ रविवार को स्तम्भतीर्थ में महामण्डलेश्वर वीसलदेव के राज्य—काल में श्रीविजयसिंह दण्डनायक के प्रशासन में सण्डेरगच्छीय गरिण आसचन्द्र के शिष्य पं० गुणाकर के अनुरागी श्रावक सौवर्णिक पल्लीवाल ज्ञातीय ठा० विजयसिंह पत्नी ठा० सलषणदेवी के पुत्र जस (राज) और तेजपाल ने आत्मश्रेयार्थ श्री योग शास्त्र (३ प्र०) ठ० रतनसिंह से लिखवाकर अर्पित किया।*

---

१. जै० पु० प्र० सं० प्र० २७ पृ० २६।
२. प्र० सं० पृ० १६ प्र० २३।
* प्र० सं० पृ० ८३ प्र० १३५।

पल्लीवाल ज्ञातीय श्रेष्ठि साल्हा
और
उसका प्रसिद्ध कुल

विक्रमीय तेरहवीं शताब्दी के अर्ध भाग में स्तम्भनपुर में श्रेष्ठि आभू नामक पल्लीवाल ज्ञातीय रहता था। उसके वीरदेव नाम का एक पुत्र था। वीरदेव के दो पुत्र महणसिंह और बीजा (विजयसिंह) हुए।

ज्येष्ठ पुत्र महणसिंह का विवाह महणदेवी से हुआ। इनके राणिग, वइरा और पूना (पूनमचन्द्र) तीन पुत्र हुए। राणिग का पुत्र झांझण था। झांझण के चार पुत्र थे सलषा, विज (य) पाल, निरया और जेसल। सलषा के खीमसिंह, विजयपाल के जयसिंह और नरसिंह और तृतीय पुत्र निरिया के, उसकी नागलदेवी नामा स्त्री से लखमसिंह, रामसिंह और गोवल तीन पुत्र रत्न हुए।

वीरदेव के कनिष्ठ पुत्र बीजा की स्त्री श्रीदेवी नामा से कुमारपाल भीम और मदन नाम के तीन पुत्र उत्पन्न हुए। कुमारपाल का वंश नहीं चला। संभव है वह अविवाहित अथवा बालवय में ही स्वर्ग सिधार गया हो। भीम की स्त्री कपूरदेवी थी। मदन का विवाह सरस्वती नामक कन्या से हुआ था और उसके देपाल नामक पुत्र था।

भीम के चार पुत्र थे—पद्म, साहण, साम (मं) त, और सूरा। पद्म का पुत्र धीधा और घीधा का पुत्र पूना (पूनमचन्द्र) था। साहण के पुत्र का नाम नहीं लिखा गया है; परन्तु उसके कडुआ नामक पौत्र था। सूरा के सुहवनामा स्त्री थी। इनके प्रथिमसिंह और पाल्हणसिंह दो पुत्र हुए। पाल्हणसिंह की पाल्हणदेवी से लींब और आंब दो पुत्र हुए थे। प्रथिमसिंह का परिवार विशाल था। उसके पांच पुत्र, लगभग डेढ़ दर्जन पौत्र-प्रपौत्र थे।

प्रथिमसिंह की स्त्री का नाम प्रीमलदेवी था। प्रथिमसिंह अग्रणी वणिक था। उसकी स्त्री भी पुण्यशालिनी और प्रेम परायणा थी। इनके सोम, रत्नसिंह, साल्हा और डूंगर नाम के पांच पुत्र हुए।

सोम सौम्यप्रकृति और महान् गुणवान था। उसके साजणदेवी स्त्री थी। नाराण, वाछा, गोधा और राघव नामक चार पुत्र थे।

रत्न महान् दानी था–जिसने अपने दान रूपी शीतल जल के अक्षुण्ण प्रवाह से दारिद्रताप से संतप्त पृथ्वी को शीतल बना दिया था। उसने शत्रुंजयादि तीर्थों की संघयात्रायें करके संघपति के गौरवशाली पद को प्राप्त किया था। ऐसा महान् दानी एवं धर्मात्मा रत्न के रत्नदेवी नामा सुशीला स्त्री से गुणवान् तीन पुत्र धन, सायर और सहदेव थे। रत्न का अपने लघु भ्राता सिंह पर अधिक स्नेह था। धर्म कार्य एवं संघयात्रा में सिंह

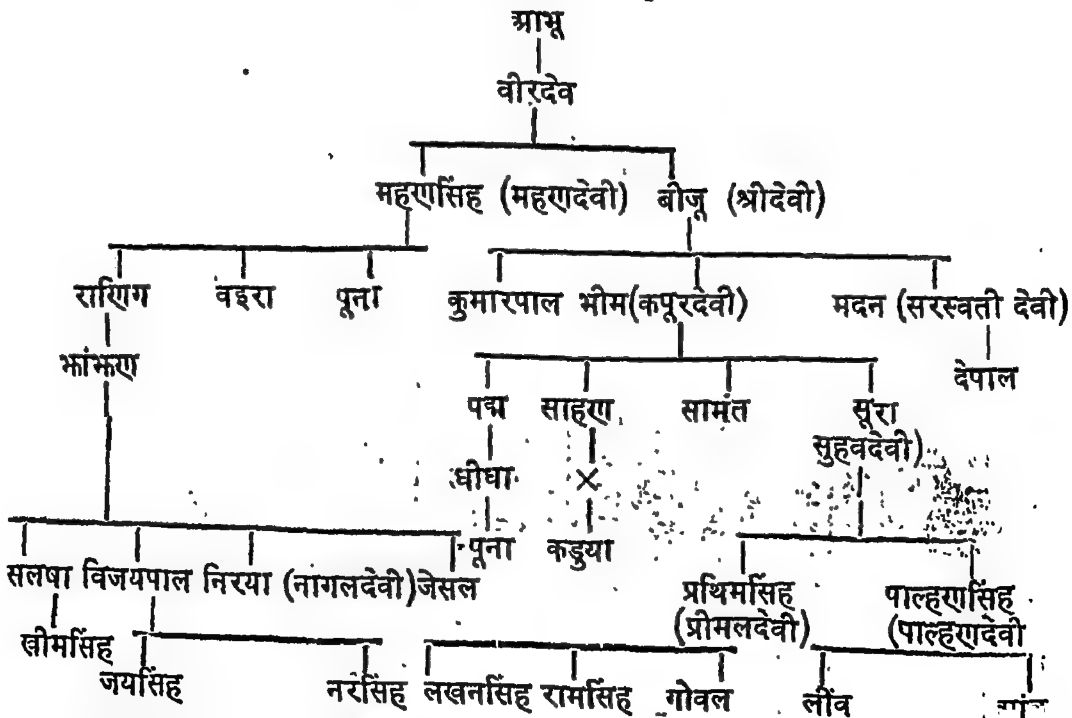
सदा उसके संग रहा।

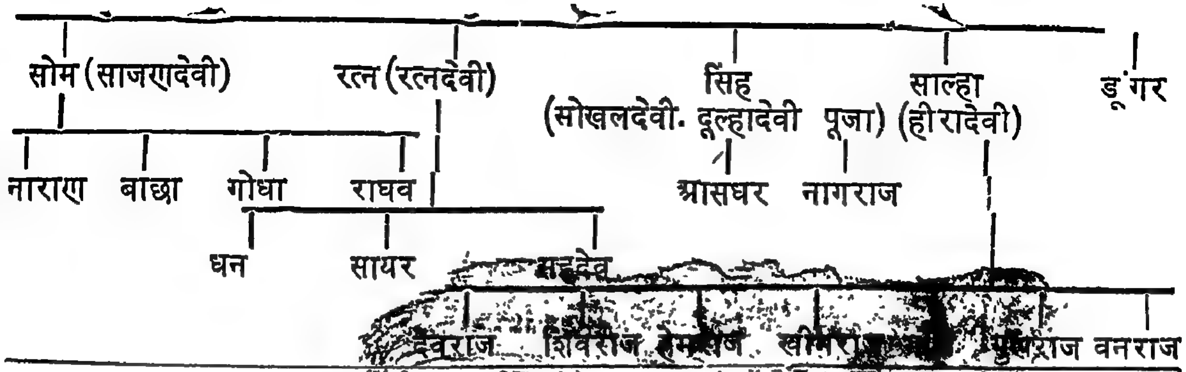
सिंह सुधीर, प्रभूतगुणी, दृढ़प्रतिज्ञ, गुरु और जिनेश्वर देव का परमोपाशक था। उसने वि० सं० १४२० में श्रीं जयानंदसूरि और गुरु देवसुन्दरसूरि का महान् सूरि पदोत्सव किया था। सोषलदेवी, दुल्हादेवी, और पूजी नामा उसकी तीन स्त्रियां थीं। दुल्हादेवी के आसधर और पूजी के नागराज नामक एक-एक पुत्र था।

प्रशस्ति प्रधान पुरुष साल्हा था। साल्हा की स्त्री पुण्यवती हीरादेवी थी। इनके सात पुत्र थे—देवराज, शिवराज, हेमराज, खीमराज, भोजराज, गुणराज और सातवां वनराज। साल्हा ने श्री शत्रुंजयतीर्थ की यात्रा की थी। सिंह के बड़े भ्राता रत्न के पुत्र धनदेव और सहदेव ने प्रभावशाली सिंह के आदेश से वि० सं० १४४१ में श्री ज्ञानसागरसूरि का सूरिपदोत्सव किया तथा निरया के पुत्र लखमसिंह, रामसिंह और गोवल ने वि० सं० १४४२ में अशेष-दूर-दूर के स्वधर्मी बंधुओं को निमन्त्रित करके श्रीं कुलमण्डन श्री गुणरत्नसूरि का सूरिपदोत्सव किया।

श्रेष्ठि साल्हा की पत्नी हीरादेवी जैसी सुशीला, निर्मलबुद्धि थी। वैसे ही धर्मात्मा उसके पिता लूंढ़ा और माता लाषण देवी थी।

श्रेष्ठि साल्हा का वंश वृक्ष इस प्रकार है :


श्रेष्ठि साल्हा का वंशवृक्ष
आभू
वीरदेव
महणसिंह (महणदेवी)
बीजू (श्रीदेवी)
राणिग
वइरा
पूना
कुमारपाल
भीम(कपूरदेवी)
मदन (सरस्वती देवी)
झांझण
पद्म
साहण
सामंत
सूरा
सुहवदेवी)
देपाल
धीधा
पूना
कडुया
सलषा
विजयपाल
निरया (नागलदेवी)
जेसल
प्रथिमसिंह
(प्रीमलदेवी)
पाल्हणसिंह
(पाल्हणदेवी
खीमसिंह
जयसिंह
नरसिंह
लखनसिंह
रामसिंह
गोवल
लींव



१. जै० पु० प्र० सं० प्र० ४० पृ० ४२

२. प्र० सं० प्र० १०२ पृ० ६४

पत्तन के संघवीपाड़ा के ज्ञान भंडार में 'पंचाशकवृत्ति' के अन्त में यह प्रशस्ति अपूर्ण लिखित है ।

पल्लीवाल ज्ञातीय श्रेष्ठि लाषण और वारय के परिवार

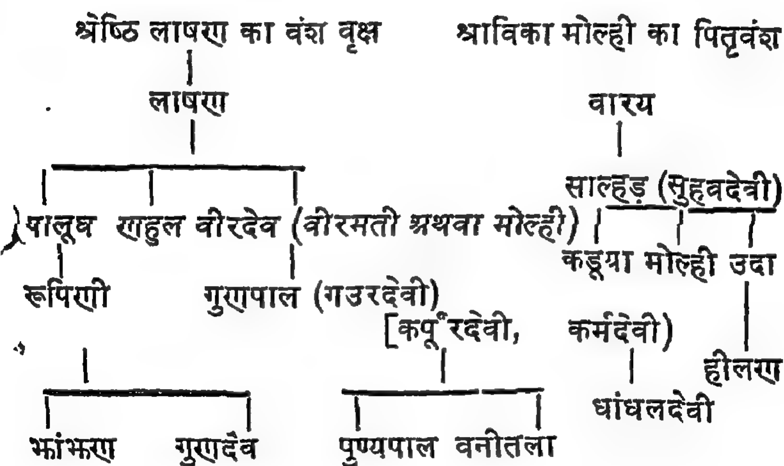
वि० तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी के संधि काल में वाग्भट्ट-बाढ़मेर (मारवाड-राजस्थान) में पल्लीवाल ज्ञातीय श्रावक लाषण रहता था। उसके पालूघ, गहुल और वीरदेव नाम के तीन पुत्र थे।

श्रे० पालू की स्त्री रूपिणी थी। इनके झांझण और गुणदेव दो पुत्र थे। वीरदेव की स्त्री का नाम वीरमती था। वीरमती की कुमारावस्था का नाम मोल्ही था। वीरमती के गुणपाल पुत्र था जिसकी गउरदेवी नामा स्त्री थी।

उक्त मोल्ही [वीरमती] के माता-पिता हम्मीरपत्तन के रहने वाले थे। मोल्ही के पिता का नाम साल्हड़ और माता का नाम सुहवदेवी था। श्रे० साल्हड़ के पिता वारय थे। साल्हड़ के कडूया, मोल्ही और उदा नामक तीन सन्तान थीं। उदा का पुत्र हीलण था। कडूया के दो स्त्रियां थीं-कपूरदेवी और कर्मदेवी कपूरदेवी से एक पुत्र पुण्यपाल और एक पुत्री वनीतला नामा हुई। कर्मदेवी के वांचलदेवी नाम की एक पुत्री थी।

वि० सं० १३२७ में बाढ़मेर के श्री महावीर जिनालय में

श्रेष्ठि होलण, कडूया और श्राविकामोल्ही ने अपने भ्राता उदा के श्रेयार्थ श्री पार्श्वनाथ-बिम्ब करवाया। तथा भीमपल्ली* में धर्म देशना श्रवण करके श्राविका कपूरदेवी ने स्वश्रेयार्थ 'शतपदी' नामक पुस्तक की प्रति वि० सं० १३२८ आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष में पत्तन में ठ० वयजापुत्र ठ० सामंतसिह से लिखवा कर वाचनार्थ अर्पित की।



१. प्र० सं० प्र० १६३. पृ० ६४.
२. जै० पु० प्र० सं० प्र० १११ पृ० ६७-६८.
* भीमपल्ली वर्त्तमान् में भीलड़ी नामक ग्राम जोडीसा केम्प से १६ मील पश्चिम में है।

पल्लीवाल ज्ञातीय श्रे० जसदू और उसका विशाल परिवार

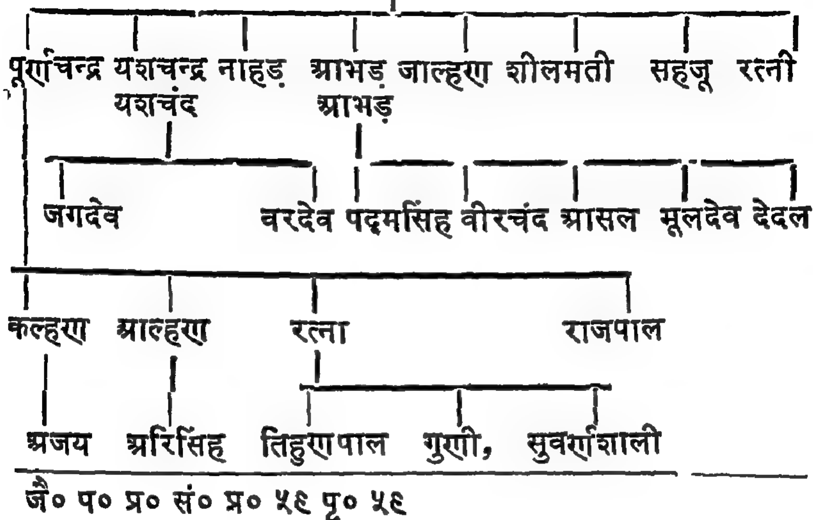
वि० की १५ वीं शताब्दी में पल्लीवाल ज्ञातीय श्रेष्ठि जसदू हो गया है। वह महा यशस्वी सौभाग्यशाली और परम सुखी था। उसकी सुशीला, कर्तव्य परायण पतिव्रता स्त्री शोभना नामा शुभगुणों की खान ही थीं। इनके पांच पुत्र और तीन पुत्रियाँ हुईं। पुत्र क्रमशः पूर्णचन्द्र, यशचन्द्र, आभड़, नाहड़ और जाल्हण थे और पुत्रियां शीलमती, सहजू और रत्नी नामा थीं। यह यशोभद्रसूरि के अनुरागी थे।

पूर्णचन्द्र के कल्हण, आल्हण, रत्ना और राजपाल नामा चार पुत्र थे। कल्हण का पुत्र अजय, आल्हण का अरिसिंह और रत्ना का पुत्र सुगुणी, सुवर्णशाली तिहुणपाल था।

यशचन्द्र के जगदेव और वरदेव नामक दो पुत्र थे। आभड़ श्री मानतुंगसूरि का परम भक्त था। उसके अभयश्री नामा स्त्री थी। अभयश्री की कुक्षी से पांच पाण्डवों के सदृश प्रसिद्ध पांच पुत्र पद्मसिंह, वीरचन्द, आसल, मूलदेव और देदल थे।

श्री माणिक्यचन्द्राचार्य विरचित पार्श्वनाथ चरित पुस्तक की प्रशस्ति से उक्त परिचय प्राप्त होता है। उक्त पुस्तक की प्रशस्ति अपूर्ण प्राप्त हुई है। उक्त पुस्तक को जसदू की सन्तान ने लिखा, अथवा लिखवाया था।

श्रेष्ठि जसदू का वंश वृक्ष



जै० प० प्र० सं० प्र० ५६ पृ० ५६

पल्लीवाल ज्ञातीय श्राविका कुमरदेवी और उसका बृहद परिवार

वि० की चौदहवीं शताब्दी में पल्लीवाल ज्ञातीय श्रेष्ठि अरिसिंह और उसकी गुणशीला पत्नी कुमरदेवी नामा रहते थे। इनके क्रमशः अजयसिंह, अभयसिंह, आमकुमार और महा धैर्यवंत धांधल नामक चार पुत्र थे।

अजयसिंह की पत्नी हीरूदेवी और गउरीदेवी नामा दो स्त्रियां थीं। हीरूदेवी के वील्हण और सांगण दो पुत्र हुए। वील्हण की स्त्री का नाम हांसला था। हांसला की कुक्षी से झांझ और वड़ दो पुत्र थे। सांगण का विवाह सुहागदेवी नामा कन्या से हुआ था।

अभयसिंह की पत्नी नायिकी थी। नायिकी के पुत्र अल्हण-सिंह और पुत्री सोहणा नामक दो पुत्र,पुत्री हुए। आल्हणसिंह की पत्नी का नाम आल्हणदेवी था। पुत्री सोहणा के संग्राम नामक पुत्र था।

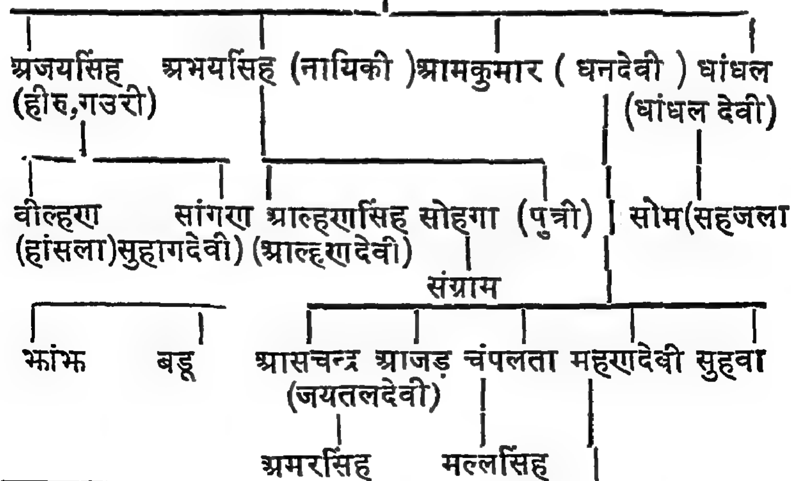
आमकुमार की पत्नी का नाम धनदेवी था। इनके आसचन्द्र और आजड़ नामक दो पुत्र और चंपलता, महणदेवी और सुहवा

नाम की तीन पुत्रियां थीं। आसचन्द्र की पत्नी जयतलदेवी थी और अमरसिंह आदि इनके पुत्र थे। चंपलता के मल्लसिंह नामक पुत्र था।

धांधल की पत्नी धांधलदेवी थी। इनके सोम नाम का पुत्र था। सोम की स्त्री सहजलदेवी थी।

इस प्रकार कुमरदेवी पुत्र,पौत्र प्रपौत्र एवं वधू, प्रवधूओं के सुख-सभोग से महा भाग्यशालिनी स्त्री थी। धर्म एवं समाज के प्रति भी उसके वैसे ही सेवा एवं उदार भाव थे। जिनप्रभसूरि के उपदेश से कुमरदेवी ने चतुर्थ प्रतिमा (व्रत विशेष) ग्रहण किया तथा औपपातिक-राजप्रश्नीय सूत्रद्वय पुस्तक लिखवाई और स्वश्रेयार्थं आगमगच्छीय श्रीरत्नसिंहसूरि के सूरि, उपाध्याय एवं साधुओं के व्याख्यानार्थ उसको अर्पित की।

वंशवृक्ष



जें० पु० प्र० सं० प्र० ६०. प्र० ६०.

पल्लीवाल ज्ञातीय सेठ हरसुखराम

इनके पूर्वजों में रुदावल में पल्लीवाल ज्ञातीय श्रे० महासिंह रहते थे। उनके पुत्र मौजीराम और खूबराम थे। मौजीराम के पुत्र हरसुखराम मोड़िया रुदावल जिला ब्याना से फतेहपुर (जि० सवाई-माधोपुर) आकर बसे थे। करौली नरेश हरबक्सपाल एक बार फतेहपुर गये। करौली में उन दिनों कोई श्रीमन्त साहूकार नहीं रहता था। राज्य को जब कभी द्रव्य की आवश्यकता पड़ती तो इधर-उधर कहीं दूर से द्रव्य का प्रबन्ध बड़े कष्ट से करना पड़ता था। करौली नरेश ने श्रेष्ठि हरसुखराम को करौली में निवास करने के लिये कहा और कई कर क्षमा कर देने तथा राज्य की ओर से सम्मान देने का आश्वासन दिया। श्रेष्ठि मौजीराम के पुत्र हरसुखराम इस वंश के प्रथम पुरुष थे जो करौली में लगभग १५० वर्ष पूर्व आकर बसे थे। करौली राज्य का कष्टम, तोशाखाना, जमादार खाना एवं खजाना श्रेष्ठि हरसुखराम के आधीन था। आवश्यकता के समय राज्य को द्रव्य-सहायता करने के उपलक्ष में ये सम्मान मिला तब से राज्य-विलयकाल तक इस कुल को न्यूनाधिक अंशों में अनवरत बने रहे। हरसुखराम के छोटे काका खूबराम थे।

इस कुल की ख्याति श्रेष्ठि सुन्दरलाल के समय में और अधिक बढ़ी। महाराजा जयसिंहपाल ने श्रेष्ठि सुन्दरलाल को उनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर एक ग्राम जागीर में प्रदान किया; परन्तु बुद्धिमान् श्रेष्ठि ने जागीर लेना स्वीकार नहीं किया। इतिहास बोलता है—जिस २ जैन ने जागीर ली वह अन्ततोगत्वा जैनत्व से दूर ही नहीं हुआ वरन बड़े नरेशों के अहर्निश सम्पर्क-भी सहवास से पथ भ्रष्ट होकर जैन नहीं रहा।

सेठ वंश

आज भी इस कुल में लगभग २०० स्त्री-पुरुष बाल-बच्चे हैं। इस कुल का करौली में एक बड़ा मोहल्ला बन गया है। उस समय का एक सम्मिलित मकान इस कुल की समृद्धता, व्यापार-विस्तार का आज भी विशद परिचय दे रहा है। यह सात मंजिला है। आगे और पीछे दो मोहल्लों में खुलता है। देखने से अनुमान किया जा सकता है कि आज उसके बनाने में २-३ लाख रुपयों का व्यय सम्भव है। स्वयं करौली नगर में इस कुल के व्यक्तियों की १८ अठारह दुकानें चलती थीं। सब से बड़ी फर्म (पेढ़ी) का नाम खूबराम हरसुखराम था। उपरोक्त पुरुषों के अतिरिक्त इस कुल में निम्न व्यक्ति भी कुछ प्रसिद्ध हुए हैं।

श्रे० वालमुकुन्द और हरदेवसिंह—खूबराम और हरसुख-राम के पश्चात् ये कुशल एवं बुद्धिमान व्यापारी हुए। इन्होंने अपनी कुशलता से व्यापार को खूब बढ़ाया।

श्र० छीतरमल और वंशीधर—राज्य के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में से थे। छीतरमल जी ने एक बड़ा सुन्दर बाग लगवाया था जो आज भी विद्यमान है। इस बाग में छीतरमल जी की छतरी बनी हुई है। यह छतरी 'बाग वाले बाबा' के नाम से विख्यात है। इस कुल के लोग उसकी आज भी पूजा करते हैं।

श्र० जवाहरलाल जी—श्र० हरदेवसिंह के पुत्र हीरालाल, जवाहर लाल और चिम्मनलाल जी थे। हीरालाल जी के गेंदा लाल जी बड़े योग्य पुत्र हुए। हीरालाल जी अफीम बहुत खाते थे। सर्प तक का विप उन पर असर नहीं कर सकता था। श्र० जवाहरलालजी और सुन्दरलालजी में कुछ कारणों पर वैमनस्य उत्पन्न हो गया और तभी से इस कुल में दो दल उत्पन्न होकर ह्रास और व्यापार में हानि प्रारम्भ हुई।

पल्लीवाल ज्ञातीय दीवान बुद्धसिंह

श्रेष्ठि मोतीराम बुद्धसिंह दोनों बड़े प्रसिद्ध व्यक्ति हुए हैं। महाराजा मानिकपाल के समय बुद्धसिंह चार सहस्त्र रुपयों के वार्षिक वेतन पर राज्य के दीवान बने और एक सहस्त्र रुपयों के वार्षिक वेतन पर मोतीराम नौकर हुए। दोनों की नियुक्ति एक ही साथ वि०सं० १८३२ आषाढ़ कृष्णा एकम को हुई थी। दीवान बुद्धसिंह को दीवान को मिलने वाली समस्त सुविधायें जैसे बैठने के लिये पालकी, सेवा में रहने के लिये चाकर, मुसद्दी, घुड़सवार और पैदल सिपाही आदि मिले और तालुका सबलगढ़ के गाँव मौजा खेरला आय रु० २०००) और मौजा भांकी रु० १४००) वार्षिक वेतन के रूप में दिये गये। वि० सं० १८३३ ज्येष्ठ कृ०१ को महाराजा मानिकपाल ने दीवान बुद्धसिंह को इनके परिवार के व्यय निमित्त मौजा बल्लूपुरा और प्रदान किया। वि० सं० १८३४ आषाढ़ शु० ७ को दीवान मोतीराम बुद्धसिंह को महाराज सवाई पृथ्वीसिंह ने जयपुर में हवेली बनाने की और व्यापार धंधा करने की आज्ञा प्रदान की तथा इन पर लगने वाले कई कर जैसे

रुदावल में इनके विशाल भवन आज भी विद्यमान हैं और फतेहपुर के ठाकुर का इनकी जायदाद पर अधिकार है।

माया, राहदारी आदि माफ किये। उसकी पुष्टि में महाराजा सवाई जगतसिंह ने कई कर माफ किये और सवाई-जयपुर, कठ सवाई-जयपुर, सांगानेर, कागुढ़े, जावादीनी राणी, सांमरी, मालपुरा, टोडा रायसिंह- लोवा, वीराहोड़ा, चाटसू, निवाई, भगवतगढ़, सवाई माधोपुर, खंडार उदेई, बामणवास, हिन्डोण, टोडाभीम, पावटा, पिडामणो, वाहाचो, घोसा, खोहरी, पहाड़ी, कामा, पोट, नारनोल, अगपुरा, श्रीमाधोपुर, रामगढ़, अमरसेन, पुखावास, जोबनेर, उजीरपुर, मलारणा, टोंक, गाजीकोथानी, वैराठ, निगणपुर में व्यापार धंधा करने की आज्ञा पौष शु० २ सं० १८३४ को प्रदान की। महाराज मानिकपाल ने भी उपरोक्त वि० सं० १८३४ माघ कृ० ५ को दीवान मोतीराम बुद्धसिंह को करौली प्रमुख में दुकान, हवेली बनाने की तथा व्यापारधंधा करने की आज्ञा प्रदान की। आज भी शिखरबंध हवेली मय कचहरी के बनी हुई मौजूद है।

महाराज मानिकपाल ने वि० सं० १८४० में आषाढ़ कृ० १ को दीवान बुद्धसिंह का वार्षिक वेतन रु० चार सहस्त्र का पुनः आज्ञापत्र प्रचारित किया था। इससे यह लक्षित होता है कि वेतन के रूप में जो गाँव दिये हुए थे वे ले लिये गये हों और रोकड़ वेतन राज्य के कोष से दिया जाने लगा हो।

नोट-रियासती युग में अन्य रियासतों के लोग अन्य रियासती नगर, कस्बा राजधानियों में हाट, हवेली नहीं बना सकते थे व्यापार-

दीवान बुद्धसिंह ने करौली में जैन मंदिर बनवाया और बड़ी धूम-धाम से उसका वि० सं० १८४२ पौष० कृ०३ रविवार को प्रतिष्ठा कार्य सम्पन्न किया। उक्त मंदिर की देखरेख ,सेवा,पूजा का कार्य यति श्री नानकचंद्र जी (जिनके पूर्वजों को महाराजा गोपालसिंह ने वि० सं० १७८६ में करौली लाकर वसाया था और उनको राजवंश में पंडिताई करने तथा जन्मपत्रिकायें बनाने का कार्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी करते रहने का अमोघ अधिकार आज्ञा-पत्र द्वारा दिया था।) को अर्पित किया तथा मंदिर के नीचे की चार दूकानें भेट की।

धन्धा नहीं कर सकते थे जब तक कि उस नगर, कस्बा अथवा राजधानी का राजा उनको ऐसा करने की आज्ञा नहीं दे देता था।

रियासती काल में भेंट, बेगार, मापक, डाँड बिरार चौकी, पर्णा, आदि कई कर वैश्यों को देने पड़ते थे।



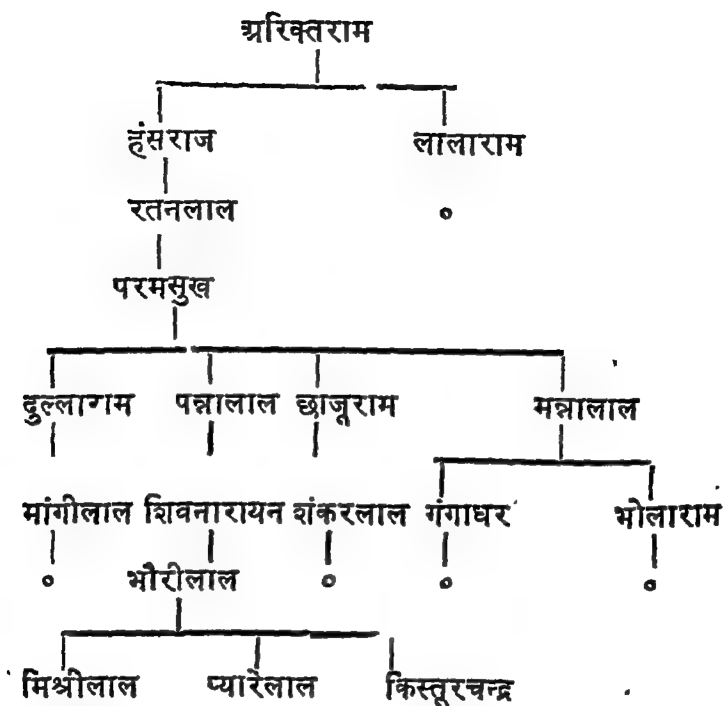
दीवान भौंरीलालजी

इस कुटुम्ब में इस समय दीवान भौरीलाल जी हैं जिनका जन्म सं० १९४१ माघ शुल्का १० सोमवार को हुआ था। शिक्षा करौली में पाई थी। करौली में सर्राफे की दूकान की। उसके बाद सं०१९७३ में कलकत्ता में छत्री के कारखाने में सेठों के यहां मुनीम हुए और वहां से रंगून (बर्मा) की दूकान पर भेजे गये। कलकत्ता में सं० २००० तक कार्य किया। इस समय इनके तीन लड़के अपने निवास स्थान करौली में ही कार्य कर रहे हैं।

वंशावली पल्लीवाल दीवान श्रीमान् बुद्धसिंह जी

(श्रेष्ठि मोतीराम दीवान करौली के गौरवशाली वंश का वृक्ष)

- मोतीराम
  - बुद्धसिंह
    - नन्दलाल
      - चुन्नीलाल [द]
        - भोलाराम
          - प्यारेलाल
    - भिखारीलाल
      - चुन्नी लाल — ०
      - माधो लाल — ०
      - सालगराम — ०
      - मोहोनलाल — ०
      - सून्नालाल — ०
      - मुरलीधर — ०
  - मेघराज — ०
  - कुशलसिंह — ०


अरिक्तराम
हंसराज
लालाराम
०
रतनलाल
परमसुख
दुल्लाराम
पन्नालाल
छाजूराम
मन्नालाल
मांगीलाल
शिवनारायन
शंकरलाल
गंगाधर
भोलाराम
०
भौरीलाल
०
०
०
मिश्रीलाल
प्यारेलाल
किस्तूरचन्द्र

पल्लीवाल ज्ञातीय दीवान जोधराज
एवं
प्रसिद्ध तीर्थ महावीर जी

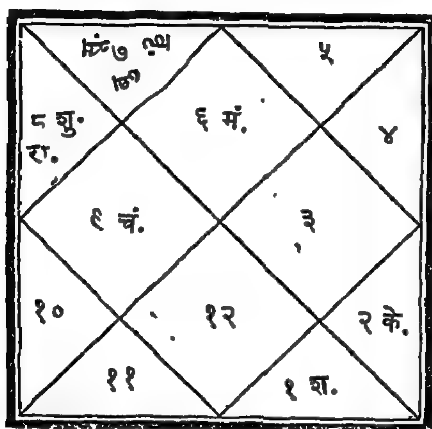
चौधरी जोधराज जी भरतपुर-राज्य के दीवान थे। इनका नाम पल्लीवाल ज्ञातीय में ही नहीं, श्री महावीर तीर्थ क्षेत्र के निर्माता होने के कारण समस्त जैन समाज में आदर के साथ स्मरण किया जाता है। इनके सम्बन्ध में मात्र इतना ही परिचय मिलता है कि इनकी बनाई हुई तीन प्रतिमायें जो वि० सं० १८२६ माघ कृ० ७ गुरुवार की प्रतिष्ठित हैं और जिनकी प्रतिष्ठा श्वेताम्बराचार्य महानन्दसूरि ने की हैं, प्राप्त होती हैं। एक मथुरा के अद्भुत-संग्रहालय में, दूसरी भरतपुर के जती मोहल्ले के पल्लीवाल जैन श्वे० मन्दिर में मूलनायक के स्थान पर और तीसरी श्री महावीर जी क्षेत्र में। श्री महावीर क्षेत्र के निर्माण और उससे दीवान जोधराज के सम्बन्ध के विषय में गोरखपुर से प्रकाशित प्रसिद्ध पत्र 'कल्याण' वर्ष ३१ संख्या १ तीर्थाङ्क में पं० श्री कैलाशचन्द्र शास्त्री ने लिखा है कि 'एक दिन भरतपुर-राज्य के दीवान पल्लीवाल ज्ञातीय जोधराज जी किसी राजकीय मामले में पकड़े जाकर उधर से निकले। उन्होंने चान्दन गाँव में भूमि से निकाली हुई अत्यन्त सुन्दर एवं प्रभावक श्री महावीर प्रतिमा

के दर्शन करके यह प्रतिज्ञा की कि अगर मैं मृत्यु दण्ड से बच गया तो मन्दिर बनवा कर उक्त प्रतिमा को बड़ी धूम-धाम से प्रतिष्ठित करूंगा। सुयोग एवं अहोभाग्य से दीवान जी पर तीन बार तोप चलाई गई और तीनों बार सौभाग्य से दीवान जी बाल २ बच गये। तब उन्होंने उक्त प्रतिज्ञा के पालन में चाँदन गाँव में जिनालय का निर्माण करवाया और उसमें उपरोक्त महावीर जी की प्रतिमा को प्रतिष्ठित करवा कर संस्थापित किया।

श्री महावीर जिनालय, चाँदन गाँव, तहसील हिंडौन, राज्य जयपुर में भरतपुर—माधोपुर के बीच स्टेशन महावीर जी जो रतलाम—कोटा-मथुरा रेल्वे लाईन से तीन मील के अन्तर पर आ गया है। करौली भी वहां से अधिक दूरी पर नहीं है। हिंडौन और करौली में और आस पास गांवों में जैन और उस पर भी पल्लीवाल ज्ञातीय घर अच्छी संख्या में आज भी विद्यमान हैं। इस तीर्थ में प्रति वर्ष वैशाख बदी पड़वा और चैत्री पूर्णिमा को भारी मेला लगता है और श्वेताम्बरी, दिगम्बरी दोनों अच्छी संख्या में उपस्थित होते हैं। वैसे प्रसिद्ध तीर्थ होने के कारण दूर २ से जैनी प्रतिदिन आते ही रहते हैं। करीब ४० वर्षों से तीर्थ श्वेताम्बर है या दिगम्बर है—इस प्रश्न को लेकर दोनों पक्षों में मुकद्दमा बाजी चल रही है। परिणाम जो कुछ हो। इस तीर्थ के दर्शन करने के लिए जैनेतर भी बड़े हर्ष और आनन्द से आते हैं। मीना, गूजर आदि सर्व ज्ञातियां भी उक्त प्रतिमा को पूजती हैं।

दीवान जोधराज ने डीग में व कर्मपुरा में भी जैन मन्दिर बनवाया था। ये हरसाणा नगर के रहने वाले थे। इनका गोत्र पल्लीवाल डगिया चौधरी था। इनका जन्म वि० सं० १७९० का० शु० ५ तदनुसार सन् १७३३ नवम्बर १४ सोमवार को हुआ

जन्म लग्न



था। महाराजा केशरीसिंह के राज्यकाल में इन्होंने उक्त प्रतिमाओं को प्रतिष्ठा करवाई थी, जो मथुरा के अजायब गृह में सुरक्षित प्रतिमा से सिद्ध होता है। प्रतिमा पर यह लेख है :—

'संवत् १८२६ वर्षे मिती माघ वदी ७ गुरुवार डीग नगर महाराजे केसरिसिंह राजा, विजय (गच्छे) महा भट्टारक श्री पूज्य महानन्द सागर सूरिभिरते द्दपदत्त (देशात) डगिया पल्लीवाल वंश गोत्र हरसाणा नगर वासिन चौधरी जोधराजेन प्रतिष्ठा कारापितायां।'

मूर्ति के निकलने की कथा इस प्रकार है:—

जहाँ मन्दिर बना हुआ है उस स्थान के कुछ समीप ही एक चमार की गौ नित्य दूध झार कर आती थी। गौ से लगातार कई दिन दूध न मिलने पर कारण की शोध में चमार ने देखा कि उसकी गौ उक्त स्थान पर दूध झार रही है। चमार इसको शुभ मान कर हर्षित हुआ और घर आ गया। एक रात्रि को उसको स्वप्न हुआ कि—भगवान महावीर की प्रतिमा बनकर तैयार हो गयी है, इस को बाहर निकाल। चमार ने स्वप्न के आधार पर उक्त स्थान कों खोदा और वहाँ से उक्त वीर प्रतिमा प्रकट हुई। चमार ने उसको निकाल कर भूमि शुद्ध करके वहीं विराजमान करदी। इस घटना के कुछ समय पश्चात् ही दीवान जोधराज ने उस प्रभावशाली प्रतिमा के दर्शन किये और मृत्यु दण्ड से बच जाने पर मन्दिर बनवाकर उसे संस्थापित करने की शपथ ली थी। उक्त चमार कुल का तीर्थ से अब तक भी कुछ सम्बन्ध चला आता-बतलाया जाता है। चढ़ावा का कुछ अंश उक्त कुल को दिया जाता है।



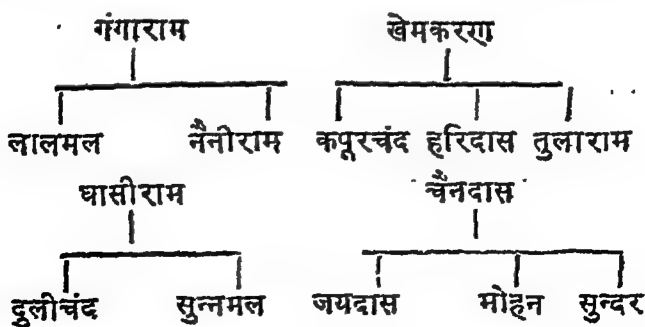
पल्लीवालज्ञातीय संघवी तुलाराम

उन्नीसवीं शताब्दी में पल्लीवाल ज्ञातीय तुलाराम श्रेष्ठि एक अत्यंत धर्मश्रद्धालु श्रीमन्त सज्जन हो गया है। वह श्रेष्ठि खेमकरण का कनिष्ठ पुत्र था। कपूरचंद और हरिदास उसके दो बड़े भ्राता थे। यह चांदन गाँव अथवा इसके निकट के ही किसी ग्राम में रहता था। उसने अपने ज्ञाति के पैंतालीस गोत्रों के कुटुम्बों को निमंत्रित करके श्री महावीर जी तीर्थ के लिये संघ निकाला। इस संघ यात्रा में गोत्र ४५ में से ३३ तेतीस गोत्रों के कुटुम्ब सम्मिलित हुए थे, उन तैंतीस गोत्रों के नाम निम्नवत् हैं;:— १. वडेरिया, २. वरवासिया, ३. कोटिया, ४. खैर ५. पचोरिया, ६. जनूथरिया, ७. वारौलिया, ८. गिदौराबक्स ९. मड़ीवाल गिदौरिया, १०. नगेसुरिया, ११. सगेसुरिया, १२. डगिया, १३. निहानिया, १४. व्यानिया, १५. खोहवाल, १६. भावरिया, १७. डडूरिया, १८. वारीवाल १९. गुदिया, २०. विलनमासिया, २१. दिवरिया, २२. बहेत्तरिया, २३. वैद्य भोगिरिया, २४. चकिया, २५. लोहकरेरिया, २६. डडूरिया २७. कुरसोलिया, २८. दादुरिया, २९. नागेसुरिया, ३०. नौलाठिया, ३१. जौलाठिया, ३२. राजौरिया, ३३. भड़कोलिया।

तुलाराम ने आमन्त्रित स्वज्ञातीय बन्धुओं का भारी सम्मान-

सत्कार किया और तीर्थ में पूजा, चढ़ावा आदि विषयों में सराहनीय उत्साह से द्रव्य व्यय किया। यह संघ यात्रा-समस्त पल्लीवाल ज्ञाति की एक प्रतिनिधि सभा भी कही जा सकती हैं; जिसमें ज्ञाति के दो तिहाई गौत्रों ने अपनी उपस्थिति दी थी। इस यात्रा का वर्णन राव-रायों की पोथियों में बहुत ही ऊंचे स्तर पर मिलता है। श्रेष्ठि तुलाराम हरिदास (राम) ने राव अथवा राय लोगों को ७२ बहत्तर कर्णकुण्डल जिनको प्रान्तीय भाषा में गुड़दा-गुरदा कहा जाता है, दान में दिये थे और तभी से तुलाराम का गोत्र बहतरिया कहलाने लगा। इससे पूर्व यह कुल मंडेलवाल गोत्रीय कहलाता था।

रायपरसादीलाल की पोथी में तुलाराम के पूर्वजों को इस क्रम से एवं इस भांति लिखा है। साहू धोपति—छिगालक्ष्मी —खीवा परसा—लोधु—हरो मोहन—चैनदास — धर्म दास गिरधर—गयासीराम—गंगाराम—खेमकरण—घासीराम।



कविवर श्री दौलतराम जी

बीसवीं शताब्दी के जैन एवं जैनेतर कवियों में से कविवर दौलतराम जी आध्यात्मिक एवं दार्शनिक कवियों में अग्रिम पंक्ति के कवि हो गये हैं। इनका जन्म वि० सं० १८५० और ५५ के मध्य हुआ, बतलाया गया है। सन् १८५७ के गदर में इनको भी कुछ कष्टों का सामना करना पड़ा था। अपने परिवार को सुरक्षा की दृष्टि से लेकर भागते हुए इनकी जन्म पत्रिका कहीं गिर पड़ी अथवा गुम हो गई। उक्त जन्म-समय इनके ज्येष्ठ पुत्र टीकाराम जी से पूछ कर लिखा गया है ऐसा श्रीमती सरोजनी देवी द्वारा संपादित 'दौलत विलास' नामक इनकी कविता-रचनाओं के संग्रह से ज्ञात हुआ है। इनके पिता पल्लीवाल ज्ञातीय लाला टोडरमलजी गंगीरीवाल ग्राम सासनी परगना हाथरस, में रहते थे। लोग इनके कुल को फतेहपुरिया भी कहते थे। लालाटोडरमलजी के एक भाई और थे और उनका नाम लाला चुन्नीलाल था। दोनों भ्राता हाथरस में कपड़े की दूकान करते थे। कविवर दौलतराम का विवाह अलीगढ़ निवासी लालाचिन्तामणि की सुपुत्री से हुआ था। कविवर कुशाग्र बुद्धि, शान्तस्वभावी, निर्लोभी, दयालु व न्यायशील प्रकृति के थे। इनका समुचित शिक्षण हाथरस में ही हुआ। कुशाग्रबुद्धि होने के कारण इन्होंने व्यवहारिक ज्ञान के साथ ही संस्कृत भाषा एवं जैन ग्रंथों का अच्छा अध्ययन भी कर

लिया था। अध्ययन प्रेम इनका अदभुत था। अध्ययन के साथ २ यह अपने पिता एवं काका की दूकान संबंधी कार्यों में भी छोटी वय से सहायता करने लग गये थे। ये छींटें छापा करते थे। छींटें भी छापते जाते थे और ग्रन्थ भी पढ़ते जाते थे। हाथरस से यह अलीगढ़ आकर व्यापार करने लगे थे। लोग कहते थे कि यह अलीगढ़ में छींटें भी छापते जाते थे और साथ ही गोमटसार आदि ग्रन्थों का अध्ययन-वाचन भी करते जाते थे। ऐसा सुना जाता है कि बुद्धि इनकी इतनी तीव्र थी कि ये एक घंटा में ५०-६० श्लोक कंठस्थ कर लेते थे। हाथरस, अलीगढ़ की जैन समाज में ये अपनी कुशाग्र बुद्धि अध्ययन शीलता, धर्मरुचि, एवं अनेक अन्य सद्गुणों के कारण बहुत अधिक लोकप्रिय प्रसिद्ध हो गये थे।

वि० सं० १८८२-८३ में मथुरा निवासी राजा लक्ष्मणदासजी जैन सी० आई० ई० के पिता श्रेष्ठिवर्य मनीराम जी और पंडित चंपालाल जी हाथरस आये, वहां उन्होंने कविवर की अत्यन्त प्रसिद्धि सुनी तथा मन्दिर में उनको गोमटसार का तल्लीनतापूर्वक अध्ययन करते देख कर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे आप को मथुरा ले गये, परन्तु वहां आप अधिक काल पर्यन्त नहीं ठहरे। पुनः सासनी अथवा लश्कर (ग्वालियर) में आकर रहने लगे। इनके पुत्र टीकाराम जी इनकी मृत्यु के समय एवं पश्चात् भी लश्कर में व्यापार-धंधा करते रहे है। इनके टीकारामजी से छोटा, एक पुत्र और था। वह लघुवय में ही अपनी प्यारी पत्नी एवं एक पुत्री को छोड़ कर स्वर्ग सिधार गया था। आपको अपने कनिष्ठ

पुत्र की मृत्यु का बड़ा दुःख हुआ था। संसार से आप वैसे तो पूर्व से ही रूठे हुए रहते ही थे, लघुपुत्र की मृत्यु से आपकी वैराग्य भावनाओं में और उदात्तपन वढ़ा। आप के द्वारा रचित पद्यों में संसार की असारता, मानव के दुःख-सुखों का चित्रण, उनसे निवारण पाने का प्रयास, मोक्ष की चाहना, जगत के मोहमयी सम्बंध की आलोचना आदि वैराग्य, उदासीन, विरक्त भावनाओं का सचोट चित्रण है। आप की रचनायें सरल, सुबोध भाषा में ऐसी आकर्पक व, प्रभावक हैं कि भक्ति रस के हिन्दी-अजैन कवि सूर, कबीर सा० की कविताओं में जैसा आनन्द आता है वैसा ही इनकी कविताओं को पढ़कर भी पढ़नेवाला उनमें खो-सा जाता है।

आप अपनी आयु के अन्तिम दिवसों में दिल्ली आकर रहने लगे थे। परन्तु आप के पुत्र टीकाराम जी लश्कर में ही रहकर व्यापार करते थे। इससे यह ज्ञात होता है कि आप अकेले ही दिल्ली आकर रहने लगे थे। दिल्ली में आपने अपना समस्त समय तत्त्वचिन्तन, आत्मचिन्तन, शास्त्राभ्यास में ही व्यतीत किया। धर्म के तत्त्वों का मंथन करके आपने वि० सं० १८९१ में छहढ़ाला की रचना की। यह ग्रंथ आध्यात्मिक दृष्टि सेउच्च कोटि का कविता संग्रह ग्रंथ है। आपको अपने स्वदेह से तनिक भी मोह नहीं था। आपने अपनी समस्त शारीरिक शक्तियों का लाभ शास्त्रानुशीलन में ही व्ययशील रक्खा था। 'छह ढ़ाला, में मने-च्छाओं, चतुर्गति, अक्षयसुख को प्राप्ति, ज्ञान-दर्शन, चारित्र इन त्रय

रत्नों पर मार्मिक, तात्विक अनुभूतिपूर्ण रचनायें हैं। छहढ़ाला के अतिरिक्त आपने अनेक मुक्तक रचनाओं का निर्माण किया है। उनमें से अधिकांश का संग्रह उक्त "दौलत विलास" नामक संग्रह पुस्तक में हो गया है।

दिल्ली में वि० सं० १९२३-२४ में आपने देह त्याग किया था ऐसा सुना जाता है कि अपनी मृत्यु दिवस के एक सप्ताह पूर्व आपने अपने शरीर त्याग का ठीक २ समय अपने परिवार को बतला दिया था और बतलाये हुए ठीक समय पर जो अगहन मास की अमावस्या का मध्यान्ह था आपने शरीर-त्याग दिया। एक विचित्र बात उल्लेखनीय साथ ही में यह हुई कि 'गोमटसार' का अध्ययन जो आप कई विगत वर्षों से करते आरहे थे वह पूर्ण हुआ। जिस दिन आपने अपना मृत्यु का समय भाषित किया उसी दिन से आप एक सन्यासी की भाँति रहने लगे। अहर्निश धर्म-ध्यान में रत रहते थे और नमस्कार महामंत्र का जाप-स्मरण करते हुए ही आपने देह-त्याग किया।

कविवर दौलतराम भारत के महान् आध्यात्मिक उच्च कोटि के कवियों में हो गये हैं। लगभग ७० वर्ष की वय में उन्होंने देह त्याग किया था। आप बचपन से ही कविता करने लग गये थे। पाठक स्वयं विचार सकते हैं कि ७० वर्ष के वय में, (जिसमें वर्ष २० के पश्चात् भी लें तो भी) आयु के ५० वर्ष जैसे दीर्घ काल में उन्होंने कितनी रचनायें की होंगी।

वि० सं० १९१० में आपने सम्मेतशिखर तीर्थ की यात्रा भी की थी।

मास्टर कन्हैयालाल एम० ए० और उनका वंश



विक्रमीय वीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में बरारा नामक ग्राम में लाला भेरूलाल जी सलावदिया गौत्रीय पल्लीवाल रहते थे। इनकी स्त्री का नाम कुन्दादेवी था। श्रेष्ठी भेरूलाल जी बड़े धर्मनिष्ठ, दयालु एवं सदाचारी थे। कुन्दादेवी भी साध्वी स्त्री थी। इनके क्रमशः तीनपुत्र निहालचन्द्र वि० सं० १९१७, में भेदिलाल वि० सं० १९२१ और कन्हेलाल हुए। कन्हैयालाल का जन्म वि० सं० १९२५ तदनुसार मास सितम्बर सन् १८६९ में बरारे में ही हुआ। श्रेष्ठि भेरूलाल रुई, किराणा का व्यापार करते थे। एक वर्ष यह नाव में रुई भरकर नदी पार करके गाजीपुर ले जा रहे थे। अकस्मात् नाव में अग्नि लग गई और समस्त रुई जल गई। ये कठिनता से

अपने प्राण बचा पाये; परन्तु रुई जलने का इनको दुःख इतना हुआ कि फिर इनका स्वास्थ्य पनपा ही नहीं। इसी अन्तर में इन को भयंकर दद्रुरोग हो गया। कई भांति के उपचार किये; परन्तु यह दद्रु इनके प्राणों का ग्राहक बना। पचपन (५५) वर्ष की आयु में ही ये स्वर्ग सिधार गये।

पिता की मृत्यु के पश्चात् घर का भार बाबू निहालचंद पर पड़ा। बाबू निहालचंद पिता की जीवितावस्था ही में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण कर चुके थे। उन दिनों में मैट्रिक-उत्तीर्ण व्यक्ति का भी बड़ा सम्मान था और सरकारी नौकरी सहज मिल जाती थी। इन्होंने कानूनगोई की भी परीक्षा दी थी। यह बड़े उदार, दयालु एवं सज्जन प्रकृति के थे। अपने दोनों भाइयों को बड़ा प्यार करते थे। इनके दो पुत्र—जुगेन्द्रचंद और सुरेशचंद तथा दो कन्यायें सत्यवती और कलावती नाम की चार संतान हुई थीं। दोनों पुत्रों का जन्म क्रमशः वि० सं० १९४० व १९५० में हुआ था। सरकारी नौकरी इन्होंने पूरे ३० तीस वर्ष की थी। इनको लकवा हो गया और ३-४ दिवस अस्वस्थ रह कर इन्होंने देह त्याग किया। इन्होंने अपने पुत्रों और भाइयों को सुशिक्षित बनाने में तन, मन, धन तीनों का पूरा २ व्यय किया।

भेदिलाल का जन्म आषाढ़ शु० १४ को वि० सं. १९२१ में हुआ था। आपका शिक्षण बरारा में ही हुआ। सं० १९३४ में अंगूठी ग्राम से आपका विवाह हुआ। इसके पश्चात् आप दूकान करने लगे। दूकान में आपको टोटा सहन

करना पड़ा । इसलिए बरारा त्याग कर आपने आगरा में धंधा चालू किया; परन्तु आगरा में भी आप को लाभ प्राप्त नहीं हुआ । फिर आप जयपुर और जयपुर से अजमेर आ गये, जहाँ लाला कन्हैयालाल जी नौकरी कर रहे थे । अजमेर की दुकान में अच्छा लाभ प्राप्त हुआ और आर्थिक स्थिति पहले से कहीं अधिक अच्छी हो गई । सन् १६२३ में इस दूकान का बँटवारा तीनों भ्राताओं में हुआ और प्रत्येक को अच्छी धन राशि प्राप्त हुई । यह दुकान भेदिलाल कपूरचन्द्र के नाम से चलती थी ।



श्री जुगेन्द्रचन्द्र जी

जुगेन्द्रचन्द ने निहालचन्द जुगेन्द्रचन्द के नाम से कपड़े की दूकान खोली। आपके दो पुत्र पदमचन्द और अमरचन्द हैं।

मास्टर कन्हैयालालजी के दो पुत्र विष्णुचन्द और प्रकाशचन्द हैं। इन्होंने 'चन्द्रा स्टोर्स' स्थापित किया यह दूकान आज अजमेर के श्री नगर रोड पर बड़ी प्रसिद्ध दूकान है और बड़े बड़े श्रीमन्त एवं प्रतिष्ठित राजा-रईस इसी दूकान से कपड़ा खरीदते हैं।

मा० कन्हैयालाल का जन्म बरारा में वि० संवत १९२५ तदनुसार सन् १८६६ के सितम्बर मास में हुआ था। ये बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि और होनहार थे। बरारा का शिक्षण समाप्त कर के आगरा भेज दिये गये और वहाँ इन्होंने यथा क्रम वि०सं० १९४० से वि० सं १९५० तदनुसार ई० सन १८८३ से १८९३ पर्यन्त दस वर्षों में कक्षा ६ से एम० ए० तक की उच्च शिक्षा प्राप्त की। बाद में आपने एल० टी० की परीक्षा भी दे दी थी। वि० सं० १९४३ में अठारह वर्ष की आयु में आपका विवाह संस्कार सम्पन्न हुआ था।

आप का जन्म पल्लीवालजाति में हुआ जो संख्या में अत्यल्प थी और फिर दूर२ लगभग तीन सौ ग्राम, नगरों में विभाजित थी साथ ही वह तीन ऐसे भागों में विभक्त थी कि उनमें परस्पर भोजन-कन्या व्यवहार तक बन्द थे। यह युग आर्य समाज के क्रान्तिकारी आन्दोलन का समय था। आपके ऊपर आर्य-समाज के सुधारक विचारों का गंभीर प्रभाव पड़ा। आपने और अन्य

आगरा के शिक्षणालयों में पढ़ने वाले भिन्न२ प्रान्तों के पल्ली-वाल विद्यार्थियों ने सन्१८९२ के ११ दिसम्बर को "पल्लीवाल धर्म-वर्धनो क्लब" नाम की सभा संस्थापित की और उसकी प्रथम बैठक बरारा में बुलाई। लगातार इसकी कई बैठकें, अधिवेशन करके आपने और अन्य ऐसे ही शिक्षित एव कर्मठ समाज सेवियों ने समाज में क्रांति की लहर उत्पन्न कर दी। बैठकों और अधिवेशनों में भाग लेने के लिये दूर२ के प्रान्त व नगरों से पल्लीवाल प्रतिनिधि आने लगे। निदान वि०सं० १९७७ ज्येष्ठ कृ०७ को बरारा के अधिवेशन में पल्लीवाल जैन कान्फरेन्स की स्थापना की गई और आगामी वर्ष के लिये आप ही सभापति चुने गये। दूसरे ही वर्ष आप के सतत् प्रयास एवं नीति पूर्व प्रयत्नों से मुरेना के पल्लीवालों के साथ भोजन व कन्या व्यवहार होना तय हुआ और सन् १९३३ के फिरोजाबाद के सम्मेलन में छीपा पल्लीवालों को भी मिला लेने का प्रस्ताव स्वीकार किया गया। इस प्रकार समस्त पल्लीवाल ज्ञातीय में जो यह संगठन हुआ सचमुच उसके निर्माण में, अनुकूल वातावरण बनाने में आपका अदम्य उत्साह, उन्नत विचार, अथक श्रम बहुत अंशों में कारण भूत है। आपके समय में तो आपका समाज में भारी सम्मान रहा ही था परन्तु इतिहास के पृष्ठों भी में ज्ञातीय सुधारकों में आप का प्रथम स्थान रहेगा।

आपने पल्लीवालज्ञाति इतिहास तैयार करने का भी विचार किया था, परन्तु कई एक सामाजिक सुधारों, व्यावसायिक झंझटों में

के दर्शन करके यह प्रतिज्ञा की कि अगर मैं मृत्यु दण्ड से बच गया तो मन्दिर बनवा कर उक्त प्रतिमा को बड़ी धूम-धाम से प्रतिष्ठित करूंगा। सुयोग एवं अहोभाग्य से दीवान जी पर तीन बार तोप चलाई गई और तीनों बार सौभाग्य से दीवान जी वाल २ बच गये। तब उन्होंने उक्त प्रतिज्ञा के पालन में चाँदन गाँव में जिनालय का निर्माण करवाया और उसमें उपरोक्त महावीर जी की प्रतिमा को प्रतिष्ठित करवा कर संस्थापित किया।

श्री महावीर जिनालय, चाँदन गाँव, तहसील हिंडौन, राज्य जयपुर में भरतपुर—माधोपुर के बीच स्टेशन महावीर जी जो रतलाम—कोटा-मथुरा रेल्वे लाईन से तीन मील के अन्तर पर आ गया है। करौली भी वहां से अधिक दूरी पर नहीं है। हिंडौन और करौली में और आस पास गांवों में जैन और उस पर भी पल्लीवाल ज्ञातीय घर अच्छी संख्या में आज भी विद्यमान हैं। इस तीर्थ में प्रति वर्ष वैशाख बदी पड़वा और चैत्री पूर्णिमा को भारी मेला लगता है और श्वेताम्बरी, दिगम्बरी दोनों अच्छी संख्या में उपस्थित होते हैं। वैसे प्रसिद्ध तीर्थ होने के कारण दूर २ से जैनी प्रतिदिन आते ही रहते हैं। करीब ४० वर्षों से तीर्थ श्वेताम्बर है या दिगम्बर है—इस प्रश्न को लेकर दोनों पक्षों में मुकद्दमा बाजी चल रही है। परिणाम जो कुछ हो। इस तीर्थ के दर्शन करने के लिए जैनेतर भी बड़े हर्ष और आनन्द से आते हैं। मीना, गूजर आदि सर्व ज्ञातियां भी उक्त प्रतिमा को पूजती हैं।

आगरा के शिक्षणालयों में पढ़ने वाले भिन्न२ प्रान्तों के पल्लीवाल विद्यार्थियों ने सन्१८६२ के ११ दिसम्बर को "पल्लीवाल धर्म-वर्धनी क्लब" नाम की सभा संस्थापित की और उसकी प्रथम बैठक बरारा में बुलाई। लगातार इसकी कई बैठकें, अधिवेशन करके आपने और अन्य ऐसे ही शिक्षित एव कर्मठ समाज सेवियों ने समाज में क्रांति की लहर उत्पन्न कर दी। बैठकों और अधिवेशनों में भाग लेने के लिये दूर२ के प्रान्त व नगरों से पल्लीवाल प्रतिनिधि आने लगे। निदान वि०सं० १६७७ ज्येष्ठ कृ०७ को बरारा के अधिवेशन में पल्लीवाल जैन कान्फरेन्स की स्थापना की गई और आगामी वर्ष के लिये आप ही सभापति चुने गये। दूसरे ही वर्ष आप के सतत् प्रयास एवं नीति पूर्व प्रयत्नों से मुरेना के पल्लीवालों के साथ भोजन व कन्या व्यवहार होना तय हुआ और सन् १६३३ के फिरोजाबाद के सम्मेलन में छीपा पल्लीवालों को भी मिला लेने का प्रस्ताव स्वींकार किया गया। इस प्रकार समस्त पल्लीवाल ज्ञातीय में जो यह संगठन हुआ सचमुच उसके निर्माण में, अनुकूल वातावरण बनाने में आपका अदम्य उत्साह, उन्नत विचार, अथक श्रम बहुत अंशों में कारण भूत है। आपके समय में तो आपका समाज में भारी सम्मान रहा ही था परन्तु इतिहास के पृष्ठों भी में ज्ञातीय सुधारकों में आप का प्रथम स्थान रहेगा।

आपने पल्लीवालज्ञाति इतिहास तैयार करने का भी विचार किया था, परन्तु कई एक सामाजिक सुधारों, व्यावसायिक झंझटों में

व्यस्त रहने के कारण आप उसको मूर्त रूप न दे सके। फिर भी आपने यत्र तत्र टिप्पण लिखे, ऐतिहासिक सामग्री का संकलन किया, जिनका इस प्रस्तुत लघु इतिहास में सराहनीय उपयोग किया गया है।

आपने, जैसी ज्ञाति की सेवा की वैसे हीं आपने कुल को भी सम्पन्न बनाया। ज्येष्ठ भ्राता निहालचंद जी के स्वर्गवास के पश्चात् आपने उनके पुत्रों को पुत्रतुल्य समझा तथा अपने द्वितीय व भ्राता को अजमेर बुलाकर अपनी सम्मति-सूचना से व्यापार में योग-सहयोग दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि तीनों भ्राताओं के कुल अच्छे समृद्ध और सुखी बने। आप नारमल स्कूल अजमेर के यशस्वी प्रधानाध्यापक रहे थे।

विवाह संस्कार के १६ १७ वर्ष पश्चात् आपके दो सुपुत्र विष्णुचन्द्र और प्रकाशचन्द्र हुए जिनका जन्म क्रमशः वि० सं० १६६० और १६६२ में हुआ।

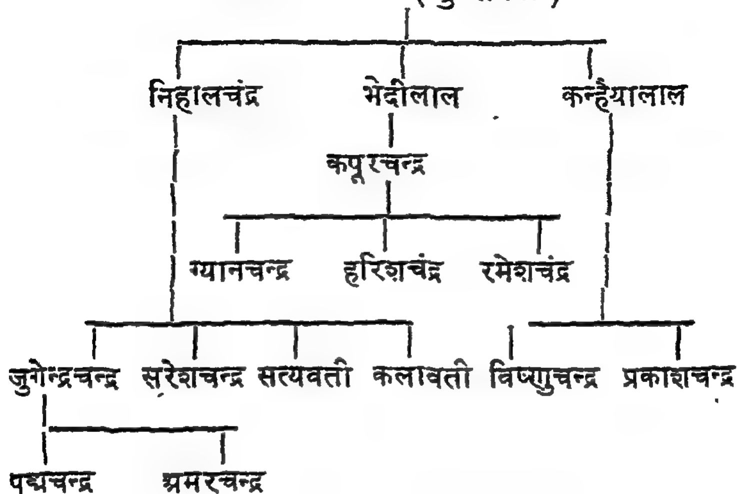
जन्म भूमि ग्राम बरारा से भी आपको सदा प्रेम रहा। बरारा में आपने 'वंशोन्नति' नाम की सभा स्थापित की थी। इस सभा की कई बैठकों के हो जाने पर यह प्रेरणा प्राप्त हुई कि पल्लीवाल ज्ञातीय कुल एवं वंशों में प्रचलित रीति-रश्मों की (जन्म से मृत्यु पर्यन्त होने वालों की) एक सूची के रूप में 'पल्लीवाल रीतिप्रभाकर' पुस्तक प्रकाशित की जाय। इस पुस्तक का द्वितीय संस्करण परिवर्धन संशोधन के साथ आपने और मास्टर मंगलसेन ने तैयार किया

था। यह पुस्तक आज तक रीति- रश्मों के पालन-व्यवहार के उपयोग में आती है।

पल्लीवाल ज्ञाति आपकी सदा चिरऋणी रहेगी। इसमें कोई सन्देह नहीं। आपका वश आपके सद् प्रयत्न और मार्ग-दर्शन से जो उन्नति कर सका वह आपके नाम को कभी भी विस्मृत नही कर सकेगा। आप-माता-पिता के भी परम भक्त थे। पिता की सेवा तो आप अधिक नहीं कर सके, क्यो कि वे ५५ वर्ष की आयु में ही देह त्याग कर चुके, परन्तु आपकी माता ९० (नब्बे) वर्ष की आयु भोगकर मृत्यु को प्राप्त हुई थीं। आपने अपनी माता की एक सुपुत्रतुल्य सेवा करके शुभाशीर्वाद प्राप्त किये और उन्ही आशीर्वाद से आपका जीवन महान् यशस्वी और उपयोगी बना।

सर्व श्री बालकराम, निहालचन्द्र, बुलाकीराम, नारायणलाल, लल्लू राम और बाबू छोटेलाल इसी कुल के सुशिक्षित, समाज प्रेमी एवं उत्साही व्यक्ति थे। धर्म वर्धनी क्लब की स्थापना के समय ये सर्वसज्जन आगरा में अध्ययन कर रहे थे और क़्लब की स्थापना में इनका- प्रमुख सहयोग एवं श्रम था। बरारा के इस शिक्षित कुल ने पल्लीवालज्ञाति को तन, मन, धन, से स्मरणीय सेवायें की हैं।

वंशवृक्ष


श्रेष्ठि भैरूंलाल (कुन्दादेवी)
निहालचंद्र
भेदीलाल
कन्हैयालाल
कपूरचन्द्र
ग्यानचन्द्र
हरिशचंद्र
रमेशचंद्र
जुगेन्द्रचन्द्र
सुरेशचन्द्र
सत्यवती
कलावती
विष्णुचन्द्र
प्रकाशचन्द्र
पद्मचन्द्र
अमरचन्द्र

श्री मिट्ठनलालजी कोठारी

भरतपुर के श्री मिट्ठनलालजी कोठारी पल्लीवाल का जन्म संवत् १६४७ भाद्रपद शुक्ला ११ बुद्धवार तदनुसार दिनाङ्क २६ सितम्बर सन १८६० के दिन पहरसर ग्राम (जिला भरतपुर) में हुआ। आपके पिता का नाम श्री मूलचन्दजी और माताजी का नाम श्री धनवन्तीबाई था। जब आपकी आयु ६ वर्ष की थी तब आप भरतपुर के लाला चिरंजीलालजी पल्लीवाल श्वेताम्बर जैन के दत्तक रूप में आये। बाल्यकाल में विद्याध्ययन करते रहे। सन १६०८ की २४ दिसम्बर को आपके पिता श्री चिरंजीलालजी का स्वर्गवास हो गया। पिता के स्वर्गवासी हो जाने पर उनके रिक्त स्थान पर महकमे ड्योढीयान भरतपुर में राज्य ने इनको जगह दे दी। माननीया मां जी साहब श्री गिरिराज कौर जी० सी० आई०, जो उस समय के महाराज भरतपुर श्री किशनसिंहजी बहादुर की माता थीं, इनकी सेवाओं से बहुत प्रसन्न थीं और इन पर उनका पूर्ण विश्वास था। उन्होंने अपने दफ्तर कोठार में इनको कोठारी बना दिया, तभी से आप मिट्ठनलाल कोठारी के नाम से विख्यात हुए।



श्री मिट्ठनलालजी कोठारी

राज्य की नौकरी करते हुए भी आप सामाजिक धार्मिक क्षेत्र में सदा आगे बढ़कर काम करते रहे हैं। पल्लीवाल समाज और जैन धर्म की उन्नति के लिए समय-समय पर आप तन, मन, धन से सेवा करते आ रहे हैं।

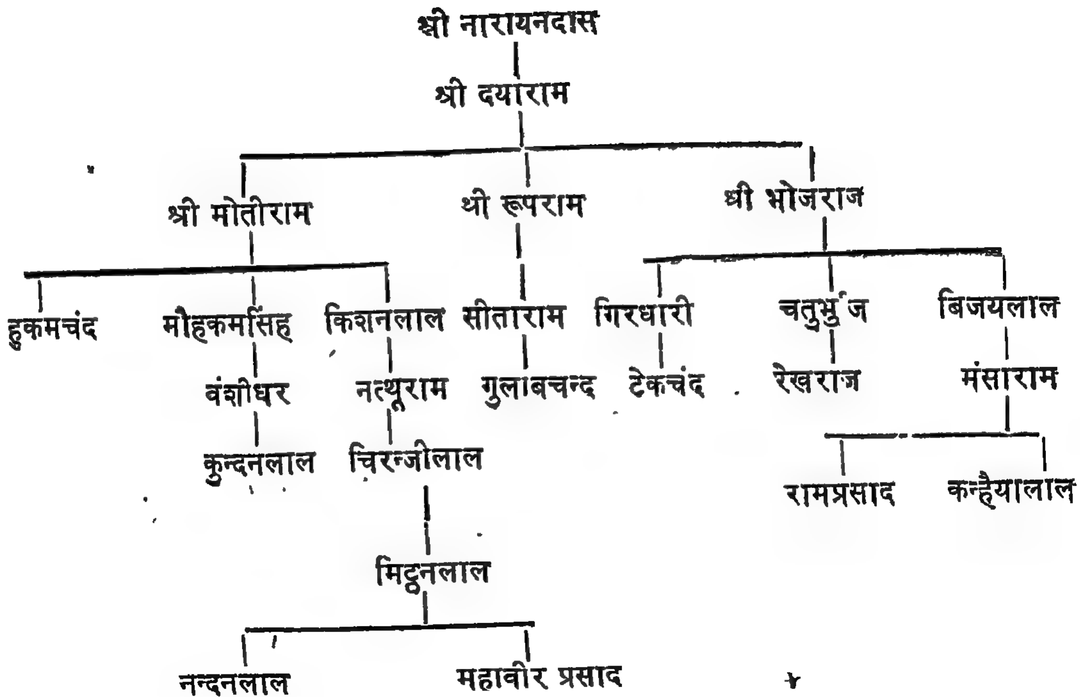
पल्लीवाल जैन श्वेताम्बर मन्दिर भरतपुर की व्यवस्था पहिले बहुत खराब थी! मन्दिर की ऐसी दशा देखकर श्री मिट्ठनलालजी कोठारी ने उसका प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया।

आज उस मन्दिर की दशा बहुत अच्छी है। आपके ही प्रयास से पल्लीवाल जैन कान्फ्रेंस की स्थापना हुई और उसी के द्वारा आपने पल्लीवाल जन गणना और कई पल्लीवाल जैन मन्दिरों का जीर्णोद्धार आदि कार्य भी कराये।

भरतपुर के श्री महावीर भवन को सुन्दर ढङ्ग से बनाने का श्रेय भी आपको ही है।

आपने सन १९३५ में कुछ पल्लीवाल भाइयों के साथ तीर्थाधिराज श्री सिद्धाचलजी और गिरिनारजी की यात्रा की। इसके पश्चात सन् १९५६ ई० में एक यात्री संघ लेकर आप मोटर बस द्वारा पूर्व देशीय जैन तीर्थों की यात्रार्थ गये जिसका विवरण १ सितम्बर १९५६ के 'श्वेताम्वर जैन' अखबार में छप चुका है।

श्री मिट्ठनलालजी कोठारी के पूर्वजों में श्री नारायनदासजी के पौत्र और श्री दयारामजी के पुत्र दीवान मोतीरामजी बहुत प्रख्यात व्यक्ति हुए। जिनको महाराज साहब श्री रंजीतसिंह भरतपुर नरेश ने एक पट्टा आसौज वदी १ सम्वत १८६१ को लिख कर दिया था कि भरतपुर राजे की ओर से गोवर्धन में दीवान मोतीरामजी प्रबन्ध करेंगे और उनके पास मुसद्दी एक जमादार सिपाही ४८ व घोड़ा घुड़ सवार वगैरः रहेंगे और उनकी तनख्वाह खर्चा वगैरः सब राज्य से उनके पास भेज दिया जाया करेगा। जिनका शाजरा निम्न प्रकार है; इस शजरे के वर्तमान कुटुम्ब में प्रख्यात व्यक्ति श्री मिट्ठनलालजी कोठारी हैं।


श्री नारायनदास
श्री दयाराम
श्री मोतीराम
श्री रूपराम
श्री भोजराज
हुकमचंद
मौहकमसिंह
किशनलाल
सीताराम
गिरधारी
चतुर्भुज
बिजयलाल
वंशीधर
नत्थूराम
गुलाबचन्द
टेकचंद
रेखराज
मंसाराम
कुन्दनलाल
चिरन्जीलाल
रामप्रसाद
कन्हैयालाल
मिट्ठनलाल
नन्दनलाल
महावीर प्रसाद

डा० बेनीप्रसाद, एम० ए० पी० एच० डी०

आपका जन्म १९ फरवरी १८९५ में एक साधारण परिवार में हुआ था।

जीवन का अधिकांश भाग प्रयाग में व्यतीत हुआ। कुछ वर्ष कानपुर में भी रहना हुआ। पढ़ने में तीक्ष्ण बुद्धि होने से प्रत्येक कक्षा में प्रथम आते रहे और परितोषिक प्राप्त करते रहे।

इलाहाबाद विश्व विद्यालय से इतिहास में एम० ए० प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया, जब कि उस समय प्रथम श्रेणी इस विषय में बिरले ही छात्रों को मिलती थी। इनके प्रोफेसर डा० रशबुक बिलियम्ज ने इनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और कहा कि इतना मेधावी छात्र उनको अपने जीवन काल में दूसरा नहीं मिला है।

एम० ए० के अध्ययन के साथ-साथ दो वर्ष इतिहास में ही रिसर्च स्कालर रहे और विश्व विद्यालय से छात्र वृत्ति पाते रहे। फिर इलाहाबाद विश्व विद्यालय में इतिहास के प्राध्यापक (लेक्चरार) नियुक्त हुए और शीघ्र ही वहाँ रीडर हो गये।

दो बार लन्दन गये और वहाँ शोध कार्य में उन्होंने पी०एच० डी० तथा डी० एच० सी० की उपाधियाँ प्राप्त कीं।

भारत आकर शीघ्र ही इलाहाबाद विश्व विद्यालय में राजनीति के प्रोफेसर नियुक्त हो गये।

इतिहास तथा राजनीति के अतिरिक्त वह अंग्रेजी हिन्दी और संस्कृत के भी ऊँचे विद्वान थे। डाक्टरेट के लिए थीसिज के अतिरिक्त उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखी जिनमें अंग्रेजी में 'जहाँगीर' का इतिहास सबसे प्रसिद्ध है। अब इसका हिन्दी अनुवाद भी हो गया है।

एक बार यह इन्डियन पोलिटिकल साइन्स कान्फरेंस के अध्यक्ष भी निर्वाचित हुए। अध्यक्षीय पद से इनका भाषण अत्यंत सारगर्भित हुआ था।

महात्मा गांधी ने भी एक बार इन से देश के संविधान का मसौदा निर्माण करने के सम्बंध में परामर्श किया था।

विश्व विद्यालय में इनकी योग्यता की ख्याति के कारण ही देश के प्रत्येक सूबे के बहुत से छात्र राजनीति पढ़ने के लिए आते थे। इनको विद्वत्ता की ख्याति केवल देश में ही नहीं थी वरन् अन्तर्राष्ट्रीय थी और संसार के बडे-बड़े विश्व विद्यालय के प्रोफे-सरों से इनका काफी संपर्क रहता था और वे इनका अत्यधिक सम्मान करते थे।

इनका चरित्र बड़ा ऊँचा था। स्वभाव बड़ा कोमल था। प्रथम बार ही इनके सम्पर्क में आने पर मनुष्य अत्यन्त प्रभावित हो जाता था। आप ८ अप्रेल १९४५ ई० को जिनेन्द्रदेव का स्मरण करते हुए स्वर्गवासी हो गये।

इनके एक मात्र पुत्र श्री मोहनलाल इलाहाबाद विश्व विद्यालय में इतिहास के आचार्य हैं। वह भी बड़े योग्य और विद्वान् हैं। उनके छोटे भाई मेजर तारा चन्द क्राइस्ट चर्च कालेज़ कानपुर में अर्थ शास्त्र के आचार्य रहे। वह अभी हाल में ही रिटायर हुए हैं।



श्री गुलाबचन्द जी जैन बी० ए०



आजकल आप पंजाब सरकार में एक उच्च पद पर नियुक्त हैं। आप का जन्म मथुरा (उ० प्र०) जिला के एक गाँव मर्दम में हुआ। आपके पितामह कालूराम जी उस समय पल्लीवाल जैन जाति के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। घर में ज़मींदारी थी जिस का कार्य संचालन आपके पूज्य पिता लट्टूराम जी के हाथों में था आपके पिता दो भाई थे उनमें से ज्येष्ट भाई श्री मुरलीधर जी, जो कि गाँव के पटवारी थे इस परिवार के सबसे अधिक माननीय

और योग्य व्यक्ति रहे हैं। यह परिवार अब भी मर्दम गांव में सुशोभित है। ज़मींदारी का काम इस समय आप के सगे भाई श्री चन्द्रभान जी व उनके सुपुत्र श्री लखमीचन्द जी के हाथों में है। आपके कनिष्ठ भ्राता श्री भगवती प्रसाद जी भी पटवारी के पद पर काफी समय रह कर अब गाँव में ही ज़मीदारी के काम में हाथ बँटा रहे है। इस परिवार में शिक्षा का बड़ा प्रचार है।

ग्रामीण पाठशाला में प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद आप अध्ययन के लिए अजमेर (राजस्थान) चले गये। वहाँ राजपूताना बोर्ड की मिडिल परीक्षा में सर्व प्रथम रहे। कालेज की यूनीवर्सिटी परीक्षाओं में भी आप ऊँचे स्थानों पर उत्तीर्ण होते रहे और छात्रवृत्ति प्राप्त करते रहे। कालेज जीवन के बाद प्रतियोगिता में सफल होने पर आप गवर्नमेन्ट सर्विस में प्रविष्ट हुए। अपनी योग्यता व कार्य कुशलता के एकमात्र सहारे से आप पंजाब सरकार में Estblishment and accounts officer प्लानिंग आफीसर तथा असिस्टैण्ड सैक्रेटरी के पद पर समय २ पर रहे और अन्त में आपको सैक्रेटरी पंजाब सरकार पद Resourses, and Retrenchment Committee रिसोर्सेज व रिट्रैण्चमैंट कमेटी के पद पर नियुक्त करके प्रान्तीय सरकार ने आपको मान दिया और एक बड़ी जिम्मेदारी का काम सौंपा, जिसे आप अपनी योग्यता से भली प्रकार सुचारु रूप से चला रहे हैं। आपके एक भतीजे श्री अमीरचन्दजी बी० ए० के सुपुत्र श्री चन्द्रभान जी आजकल पंजाब सरकार में डि० सुप्रि० के पद पर नियुक्त हैं।

श्री कुन्दनलालजी एम. ए. एल. टी. प्रभाकर

(इतिहास व राजनीति)



वंश परिचय—आप जनूथरिया गोत्रीय पल्लीवाल जैन हैं। आपका जन्म १५ अगस्त १९१९ का है। आपके पितामह का नाम श्री रामचन्द्रजी तथा पिता का नाम श्री गणेशीलाल जी था। माता श्री

कस्पूरी वाई विद्यमान है। श्री बद्रीप्रसादजी श्री प्रकाशचंदजी और श्री शिखरचन्द जी नामक ३ लघुभ्राता तथा ७ वहिने है।

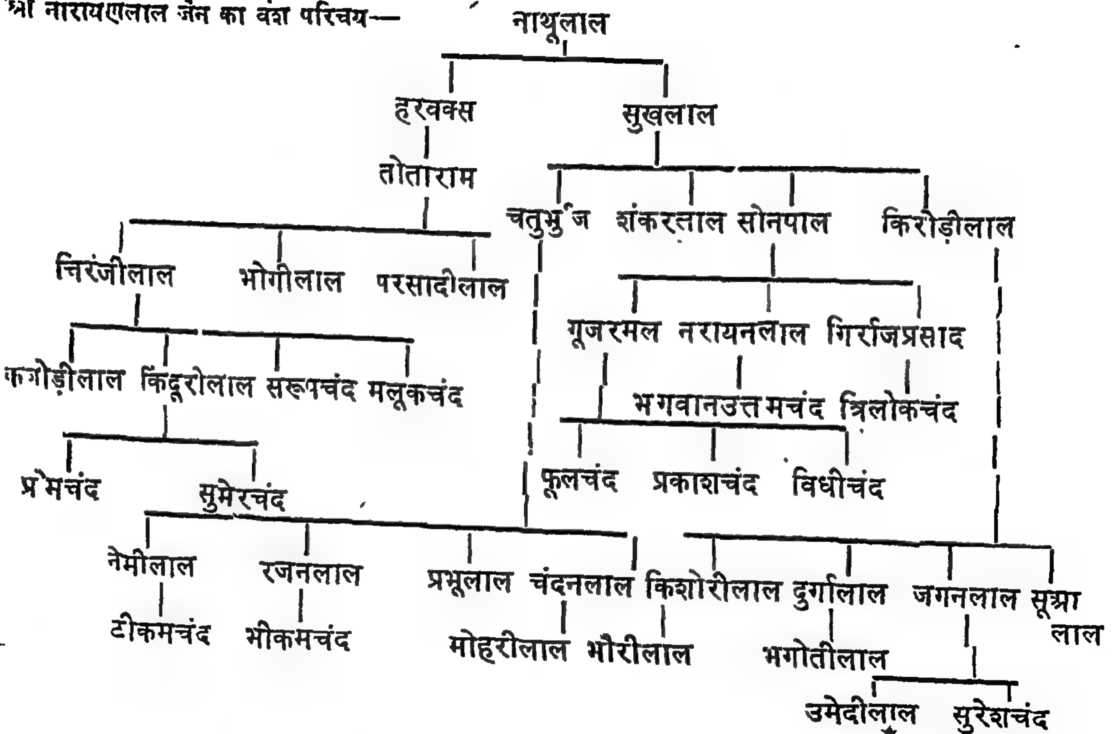
निवास स्थान—आपकी जन्म भूमि आगरा है पहले इनके पितामह आगरा जिले के मिदरवन ग्राम में रहते थे फिर वहां से आगरे आकर व्यापार किया।

शिक्षा—आपने प्रथम आगरे की पल्लीवाल पाठशाला धूलिया गंज में शिक्षा पाई तदनन्तर शिक्षा अध्ययन के हेतु भरतपुर में अपने बहनोई श्री नंदनलाल जी पुत्र श्री मिट्ठनलालजी कोठारी के यहाँ रहकर हाई स्कूल की परीक्षा दी और प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। आगे राज्य सेवा में रहते हुए M. A. और L. T. पास किया।

राज्य सेवा—हाई स्कूल परीक्षा पूर्ण होते ही आप २७-३-१९३६ से अध्यापक हुए। वड़ी योग्यता से अध्यापन करते हुए वर्तमान में आप प्रधान अध्यापक राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय वसेडी (धौलपुर) जिला भरतपुर में पदासीन हैं।

अन्य विवरण—आप भिन्न-भिन्न संख्याओं के सदस्य व पदाधिंकारी रहकर सामाजिक सेवा भी करते रहते हैं।

श्री नारायणलाल जैन का वंश परिचय—





श्री नारायणलाल जी

यह सम्वत १९८९ से जयपुर शहर में रहकर व्यापार कार्य करते हैं आपकी धर्म कार्यो के प्रति अच्छी श्रद्धा है। सदैव धार्मिक कार्यो में अगुआ रहते है।

पिछली तालिका में दिया यह परिवार जयपुर जिले की तहसील हिन्डौन के वरगमा ग्राम में एक प्रसिद्ध परिवार माना जाता है। एक ही हवेली में इस कुटुम्ब के लगभग २०० स्त्री पुरुप निवास करते हैं। किसी समय यह सब सम्मिलित रहते थे। इनका कार्य क्षेत्र

अधिकतर व्यौपार रहा है और राज्य में भी पटवार व गिरदावर रहे हैं। यह ग्राम प्रसिद्ध क्षेत्र श्री महावीरजी से ३ मील के फासले पर है। इनके परिवार में श्री महावीर स्वामीजी की भक्ति अधिक चली आ रही है। वर्तमान में श्री नरायनलाल जी अपने पिता श्री सोनपालजी के वड़े भ्राता श्री शंकरलालजी के दत्तक पुत्र के रूप में विद्यमान हैं।



श्री प्यारेलाल जैन चौधरी हरसाने वाले

आप श्वेताम्बर पल्लीवाल जैन समाज में अलवर जिले के ग्राम हरसाने में प्रसिद्ध धनीमानी सज्जन हैं। आपका जन्म कार्तिक वदी १ शुक्रवार सम्वत् १६४६ में हुआ था। आपके पूज्य पिताजी का शुभ नाम श्री मोतीलाल था। जिनका स्वर्गवास ८० वर्ष की अवस्था में समाधि पूर्वक धर्म ध्यान करते हुए हुआ था। श्री प्यारेलाल जी की धर्म भावना बहुत ही बढ़ी हुई है। आपने समय-समय पर दान देकर अपनी दान वीरता का परिचय दिया है।

१. हरसाने में गांधी विद्यालय के लिये २८ बीघा जमीन मय पुख्ता कुंआ तथा रु० १०५१) दान दिये।

२. हरसाना ग्राम के श्री जैन श्वेताम्बर मन्दिर पल्लीवाल को ३ मकान भेट स्वरूप प्रदान किये हैं।

३. बड़ौदा मेव में जैन रथ यात्रा के समय १८००) की रकम वोली में दी थी।

४. श्री गांधी विद्यालय हरसाने को समय-समय पर और भी दान दे चुके हैं।

इसके अतिरिक्त आप समय-समय पर अन्य शुभ कार्यों में

भी दान देते रहते हैं। हाल में आपने भरतपुर में श्री महावीर भवन में एक पुख्ता दूकान का निर्माण कराया है; जिसमें २०००) के लगभग रकम लगाई है।

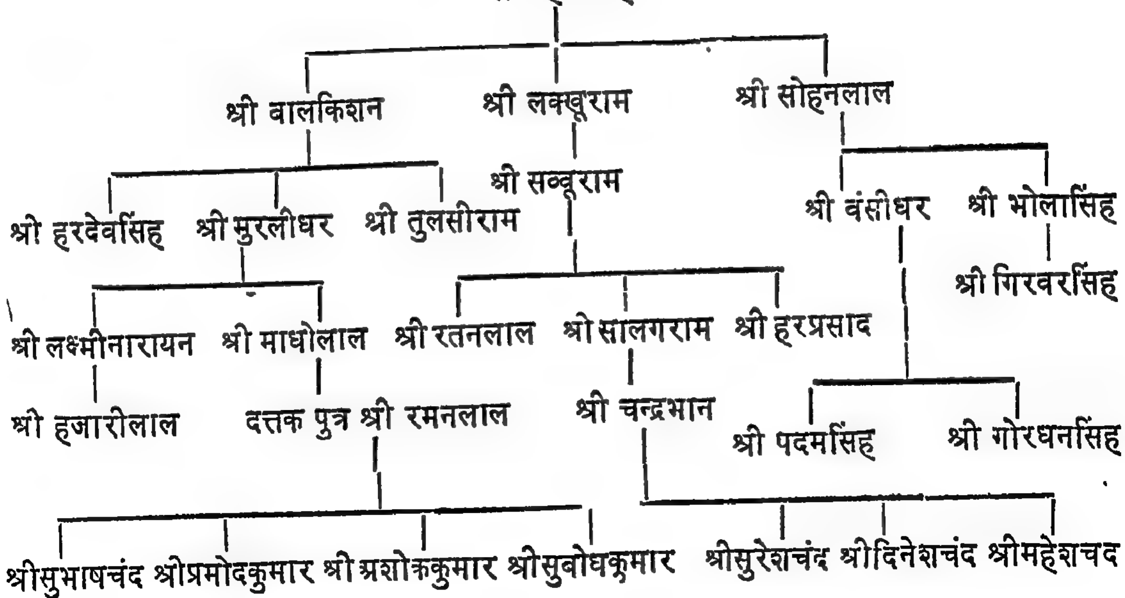
आगरा सन्मति ज्ञान पीठ के भी आप सदस्य हैं।

धार्मिक कार्यों में आप धन से ही नहीं, तन, मन और धन' तीनों लगा कर यथाशक्ति अपनी सेवाऐं अर्पित करते ही रहते हैं।



श्री केहरीसिंह जी भरतपुर

श्री केहरीसिंह जी जैन श्वेताम्बर पल्लीवाल समाज में एक प्रसिद्ध व्यक्ति हुए हैं। आपका परिवार अबभी भरतपुर के प्रसिद्ध घरानों में गिना जाता है। आपकी वंशावलि इस प्रकार है :—



उपरोक्त वंशावलि में श्री सालगराम जी के पुत्र श्री चन्द्रभान जी और श्री माधोलाल जी के दत्तक- पुत्र श्री रमनलाल जी इस परिवार के मुख्य व्यक्ति हैं। आपलोगों ने अपने परिवार के श्री पदमसिंह, श्री गोवरधनसिंह और श्री गिरवरसिंह के स्वर्गवास पर उनकी स्मृति में एक पुख्ता मकान जो कीमत में आठ हजार, का था, वेचकर उस द्रव्य को भरतपुर के जती मोहल्ला स्थित श्री जैन श्वेताम्बर मन्दिर में मूलनायक श्री मुनिसुव्रत स्वामी की संगमरमर की वेदी में तथा महावीर भवन में एक धर्मशाला बनवाने में लगाया है।



श्री कुन्दनलाल जी काश्मीरिया

संक्षिप्त परिचय



श्री कुन्दनलाल जी काश्मीरियाः—आपका जन्म एक प्रतिष्ठित परिवार में विक्रम सं० १९७५ में हुआ था। आपके पिता मह का नाम श्री नारायणलालजी और पिता श्री दीपचन्द जी थे, जो कि इस परिवार के दीपक के ही तुल्य थे। इनका स्वभाव बहुत ही सरल व सर्वप्रिय था। इस परिवार का आदि निवास स्थान नौठा ग्राम तह० नदबई में था और बाद में इस परिवार के पूर्वज ग्राम खेड़ी तह० नदबई भरतपुर स्टेट में आये। इसलिये

यह परिवार खेड़ी नौठा वालों के नाम से प्रसिद्ध है। आपकी जाति "पल्लीवाल जैन" तथा गोत्र कांशमीरिया है। समस्त परिवार श्वेताम्बर जैन धर्म का अनुयायी है। साधु मुनिराजों की सेवा में पूरा परिवार अधिक श्रद्धावान हैं। आपके भ्राता चिम्मन लाल जी हैं। जिनकी जैन धर्म में अटूट श्रद्धा है। धर्म में विशेष लगन होने के नाते से एवं जैन धर्म के कठिन नियमों का पालन करने के कारण आपको भगत जी के नाम से पुकारा जाता है। आपने सन् १९३७ में मैट्रिक की परीक्षा पास की और जनवरी सन् १९४२ में स्टेट की राजकीय सेवा में एकोन्टेन्ट जनरल के कार्यालय में प्रवेश किया। वर्तमान में आप यातायात विभाग जयपुर में औडीटर के पद पर हैं। समाज सेवा में सच्चे सेवा भावी तथा जैन धर्म के नियमों का पालन करने में पूर्णतया कटिवद्ध हैं— प्रात: तथा सायं दोनों समय सामायिक करने की लगन रखते हैं और साधु मुनियों की सेवा में भी अपने को कृत-कृत्य मानते हैं।



पल्लीवाल ज्ञाति की धर्म क्षेत्र में सेवायें

जैन ज्ञाति की मुख्य सेवायें धर्म और साहित्य के क्षेत्र में भारत की इतर ज्ञातियों के समक्ष विशिष्ट रही हैं। कोई ज्ञाति राज करने में, कोई युद्ध करने में, कोई चारकर चलाने में, कोई पुरोहितपन में रही, परन्तु जैन ज्ञातियाँ मुख्यतः धर्म सेवा और साहित्य सेवा के क्षेत्रों में दत्तचित रहीं। व्यापार व्यवसाय, कृषि आदि धंधा करके अपने लाभ एवं बचत को उपरोक्त क्षेत्रों में व्यय करती रही। जैनों के समक्ष सात क्षेत्रों की सेवा करना उनका परम कर्त्तव्य रहता है। उनमें मुख्य क्षेत्र धर्म और ज्ञान हैं। इसी कर्त्तव्य परायणता का फल है कि जैन धर्म थोड़ी संख्या में अनुयायी रखता हुआ भी भारत में गौरव भरी स्पर्द्धा रखता है। जैन मन्दिर, जैन तीर्थ तथा अन्य जैन धर्म-स्थान भारत के किसी भी बड़ी से बड़ी संख्या में रखने वाले धर्म के आनुयाइयों के धर्म स्थानों में शिल्प, वैभव मूल्य स्थल-वैशिष्ट्य में यत किंचित भी कम नहीं हैं तथा जैन ज्ञानभण्डार भी अपनी विविध विषयकता, प्रभाविकता, प्राचीनता, एतिहासिक एवं पुरातत्त्व विषयक सामग्री और धर्मग्रंथों की मौलिकता में भारत में ही नहीं, दुनिया के प्रत्येक जागरूक राष्ट्र के समक्ष अपने साहित्य की समृद्धता सिद्ध कर चुके हैं। धर्म और ज्ञान की ये सेवायें हमारे पुण्शाली पूर्वजों की एक मात्र धर्म निष्ठा

और साहित्य प्रेम की परिचायिका है। इन पूर्वजों में समस्त जैन ज्ञातियों में उत्पन्न पुरुष रहे हैं। किसी के कम तो किसी के संख्या में अधिक। पल्लीवाल ज्ञाति एक लघु ज्ञाति हैं। फिर भी इस लघु इतिहास से स्पष्ट हो जाता है कि इस ज्ञाति में उत्पन्न पुरुषों ने शत्रुंजय तीर्थ, गिरनार तीर्थ, समेत शिखर तीर्थ के लिये संघ निकाले। शिल्प कार्य भी करवाये। अर्बुद तीर्थ परं विपुल द्रव्य व्यय किया। श्री महावीर जी तीर्थ की स्थापना की और अनेक छोटे बड़े नगर और ग्रामों में मंदिर बनवाये। प्रतिष्ठायें करवाईं और अनेक जिन बिम्बों की स्थापना की।

श्री नाकोड़ा तीर्थ—आज जहाँ श्री नाकोड़ा तीर्थ है वहाँ वीरमपुर नाम का नगर था। नाकोड़ा तीर्थाधिराज प्रतिमा वि० सं० १४२६ नाकोर नामक नगर से जो वीरमपुर से २० मील दूर था, वहाँ की नदी के कालीद्रह से प्राप्त १२० जिन विम्बों के सहित लाकर नवनिर्मित मंदिर में विराजमान की गई थी। चूंकि प्रतिमा ध्वंशित नाकोर नगर की कालीद्रह से लायी गई थी अतः वीरमपुर का नाम ही वदल कर नाकोर तीर्थ के पीछे मालानो 'नाकोड़ा' प्रसिद्ध हो गया। यह नाकोड़ा तीर्थ मारवाड़ विभाग के मालानी परगना में वालोतरा रेल्वे स्टेशन से दक्षिण ६ मील के अंतर पर है। यहां तीन भव्य मंदिर हैं-एक भ० पार्श्वनाथ, द्वितीय भ० ऋषभदेव और तृतीय भ० शांतिनाथ मंदिर के नाम से हैं। प्रथम मंदिर श्री संघ

द्वारा, द्वितीय लच्छी बाई नामक श्राविका द्वारा और तृतीय श्री मालाशाह संकलेचा द्वारा बना। लच्छी बाई और मालाशाह दोनों भ्राता भगिनी थे। ये दोनों मंदिर वि० की सोलहवीं शताब्दी के द्वितीय अर्ध भाग में बने हैं।

नाकोड़ा तीर्थ सम्बन्धी कई प्रतिमा लेख एवं प्रशस्ति लेख प्रकाशित हो चुके हैं। प्रकाशित करने वाले विद्वानों में आचार्य श्रीमद विजययतीन्द्र सूरिजी द्वारा प्रकाशित 'श्री यतीन्द्र विहार दिग्दर्शन भाग दो में इस तीर्थ का सलेख विस्तृत विवरण छपा है। कुछ लेख श्री पल्लीवाल गच्छीय आचार्य यशोदेव सूरि और पल्लीवाल संघ से संबन्धित हैं। ये लेख वि० सं० १६३७, १६७८, १६८१, १६८२ हैं। इन लेखो से स्पष्ट विदित होता है। कि श्री नाकोडा तीर्थ पर पल्लीवाल गच्छ और पल्लीवाल ज्ञाति दोनों का अधिक प्रभाव रहा है। यहाँ तक ध्वनित होता है कि वीरमपुर में पल्लीवाल संघ अधिक घरों की संख्या में था और नगर में उसका वर्चस्व था।

श्री यशोदेवसूरि की विद्यमानता में वि० सं० १६६७ में संघ ने भूमिगृह बनवाया। वि० सं० १६७८ में संघ ने रंगमण्डप का चतुष्क करवाया वि० सं० १६८१ में पल्लीवाल गच्छीय संघ ने अति सुन्दर तीन गवाक्ष सहित निर्गम द्वार की चौकी विनिर्मित करवाई। एवं वि० सं० १६८२ में समस्त संघ ने नन्दिमण्डप का निर्माण करवाया।

उन्नीसवीं शताब्दी पर्यंत वीरमपुर समृद्ध एवं विशाल नगर रहा है। इस शताब्दी के अन्त में मालाशाह के एक वंशज नानक शाह ने राजकुमार के व्यवहार से रुष्ठ होकर वीरम पुर का त्याग करने का विचार किया। इस उद्देश्य की पूर्ति में उसने जैसलमेर तीर्थ के लिये एक संघ यात्रा करने का आयोजन रचा और उस बहाने वह २२०० जैन घर और ४००० जैनेतर घरों के परिवारों के सहित जैसलमेर तीर्थ की ओर चला और वे सर्व वहीं बस गये और लौटे नहीं। वीरमपुर की समृद्धि एवं शोभा इस संघ यात्रा के निष्काशन के साथ ही लुप्त हो गई और वीरमपुर कुछ ही वर्षों में उजड़ गया था। और फिर आबाद न हुआ। लेकिन तीर्थ के कारण आज भी वीरमपुर नाकोड़ा प्रसिद्ध है और कई सहस्त्र यात्रियों के प्रतिवर्ष के आवागमन के कारण अपनी पूर्व समृद्धि को चरितार्थ कर रहा है। इस तीर्थ की उन्नति एवं प्रसिद्धि में पल्लीवाल गच्छ और ज्ञाति दोनों का सराहनीय योग रहा है; यह ही विशेष उल्लेखनीय है।

श्री कोरटा तीर्थ—इस तीर्थ पर भी पल्लीवाल बन्धुओं की सेवाओं के सम्बन्ध में विशेष सुना जाता है। परन्तु इस सम्बन्ध में कोई उल्लेख प्राप्त नहीं हो सका है।

श्री अर्बुदतीर्थ—इस तीर्थ के श्री नेमिनाथ नामक लूणसिंह वसही में दण्डनायक तेजपाल की तत्त्वावधानता में ही पल्लीवाल ज्ञातीय नेमड़ और उसके परिवार ने जो-जो शिल्पकार्य करवाये उनका विशुद्ध परिचय नेमड़ के प्रकरण में दिया जा चुका है।

श्री शत्रुंजय गिरनार—तीर्थों पर भी पल्लीवाल ज्ञातीय वन्धु नेमड़ और अन्य द्वारा जो-जो शिल्पकार्य करवाये गये हैं। उनका परिचय यथाप्रसंग इस लघु इतिहास में दिया जा चुका है। यहाँ पुनः पिष्टिपेषण को उचित नहीं समझता।

पल्लीवाल श्रेष्ठिबन्धुओं द्वारा कुछ प्रतिष्ठित प्रतिमाओं का परिचय निम्नवत है :—

श्री शत्रुञ्जय तीर्थ—वि० सं० १३८३ बैसाख कृ० ७ सोमवार को पल्लीवाल ज्ञातीय पदम की पत्नी कीलहणदेवी के श्रेयार्थ पुत्र कीका द्वारा कारित श्री महावीर प्रतिमा श्री गौड़ी पार्श्व-जिनालय में विराजमान है।[1]

प्रभास पत्तन—वि० सं० १३३६ बैशाख शु० (२) शनिश्चर की पल्लीवाल ज्ञातीय ठ० आसाढ़ ठ० आसापल द्वारा पत्नी जाल्ह (ण) के श्रेयार्थ एक जिन प्रतिमा श्री बावन जिनालय की चरण चौकी में विराजमान है।[2]

इसी बावन जिनालय की चरण चौकी में द्वितीय प्रतिमा श्री पार्श्वनाथ की वि० सं० १३४० ज्येष्ठ कृ० १० शुक्रवार की प्रतिष्ठित जिसको पल्ली० वीरवल के भ्राता पूर्णसिंह ने पत्नी वय जल देवी पुत्र कुमरसिंह, कैलि (कालूसिह) भा० ठ० स्वकल्याणार्थ करवाई, विराजमान है।[3] इस प्रतिमा की प्रतिष्ठा कोरंटकीय किसी आचार्य साधु ने की।

१-३. जैसलमेर नाहर लेखांक ६५७, १७६१, १७६२।

शीयालकोट (काठियावाड़)—वि० सं० १३०० वैशाख कृ० ११ वुद्धवार को श्री सहजिगपुरवासी पल्ली० व्यवहारी देदा पत्नी कड़ूदेवी के पुत्र परी० महीपाल, महीचन्द्र के पुत्र रतनपाल, विजयपाल द्वारा व्य० शंकर पत्नी लक्ष्मी के पुत्र संघपति मूघिग-देव के स्वपरिवार सहित देवकुलिका युक्त श्री मल्लिनाथ बिम्ब कारितं एवं चन्द्रगच्छीय श्री हरिप्रभसूरिशिष्य श्री यशोभद्र सूरि द्वारा प्रतिष्ठित जैन मंदिर में विराजमान है।[1]

अहमदाबाद—वि० सं० १३२७ फा० शु० ८ की चौमुखा जिना लय में पल्ली० कुमरसिंह भार्या कुमरदेवी के पुत्र सामन्त पत्नी शृंगारदेवी के श्रेयार्थ उनके पुत्र ठ० विक्रमसिंह, ठ० लूण, ठ० सांगा के द्वारा कारित एवं वडगच्छीय श्री चन्द्रसूरि शिष्य श्री माणिक्यसूरि द्वारा प्रतिष्ठित एक मोटी धातु पंचतीर्थी विराजमान है।[2]

अणहिलपुर पत्तन—वि० सं० १३७१ आषाढ़ शु० ८ रविवार की पल्लीवाल ज्ञातीय श्रेष्ठि द्वारा प्रतिष्ठित श्री आदिनाथ धातु बिम्ब कनासना पाड़ा के वड़े मन्दिर में विराजमान है।[3]

महेसाना—एक जैन मन्दिर में वि० सं० १३९७ माघ शु० १० शनिश्चर को पल्ली० ठ० छाड़ा पत्नी नायकी के पुत्र के श्रेयार्थ कारित एवं श्री धर्मघोपगच्छीय श्री मानतुङ्ग सूरिशिष्य श्री हंस-राजसूरि द्वारा प्रतिष्ठित एक श्री महावीर धातु प्रतिमा विराज मान है।[4]

(१) जैसलमेर नाहर ले०११७८. २-३ जै० धा.प्र.ले. १३७, ३२९।

घोघा—वि० सं० १५१० फा०कृ० ३ शुक्रवार की पल्ली० मं० मण्डलीक पत्नी शाणी के पुत्र लाला द्वारा पत्नी रंगी तथा मुख्य कुटुम्ब सहित कारित एवं श्री अंचलगच्छीय श्री जय केसरिसूरि के उपदेश से प्रतिष्ठित श्री चन्द्रप्रभ धातुबिम्ब श्री जीरावला पार्श्वनाथ मंदिर में विराजमान है।[५]

हरसूली—वि० सं० १४४५ फा० कृ० १० रविवार की श्री हारीजग० पल्ली० श्रेष्ठि भूभा भार्या पाल्हणदेवी पूजू के पुत्र कन्नू, हापा द्वारा स्वमाता-पिता के श्रेयार्थ कारित एवं श्री शील भद्र सूरिद्वारा प्रतिष्ठित श्री महावीर धातुप्रतिमा पंचतीर्थी श्री पार्श्वनाथ जिनालय में विराजमान है।[६]

लाडोल—वि० सं० १३२६ चैत्र कृ० १२ शुक्रवार को पल्ली० श्रेष्ठि धनपाल द्वारा कारित एवं चित्रावालगच्छीय श्री शालिभद्र सूरि शिष्य श्री धर्मचन्दसूरि द्वारा प्रतिष्ठित श्री शान्तिनाथ एवं अजितनाथ धातुप्रतिमा एक जिनालय में विराजमान हैं। [७-८]

राधनपुर—वि० सं० १३५५ वैशाख कृष्णा × की श्री हारीज गच्छीय पल्ली० श्रे० जइता के श्रेयार्थ उसके पुत्र द्वारा कारित एवं श्री सूरि द्वारा प्रतिष्ठित श्री चन्द्रप्रभ धातुबिम्ब एक जिनालय में विराजमान है। [९]

गिरनारतीर्थ—वि० सं० १३५६ ज्येष्ठ शु० १५ शुक्रवार की पल्ली० श्रे० पासु के पुत्र शाह पदम पत्नी तेजला ×× द्वारा कारित एवं कुलगुरु के उपदेश से प्रतिष्ठित श्री मुनिसुव्रतस्वामी धातु प्रतिमा सहित देवकुलिका पितामह श्रेयार्थ विद्यमान है।[१]

बड़ौदा—वि० सं० १३३५ चैत्र कृ० ५ की पल्ली० पद्धूल, पद्मा द्वारा श्रे० सहजमल माता-पिता के श्रेयार्थ कारित एवं श्री विजयसेनसूरि के राज्यकाल में श्री उदयप्रभसूरि द्वारा प्रतिष्ठित श्री आदिनाथ धातु प्रतिमा दादा श्री पार्श्वनाथ मंदिर, नरसिंह जी की पोल में विराजमान है। [२]

वि० सं० १५२८ माघ कृ० ५ की पल्लीवालगच्छीय गगडरीया गोत्रीय श्री धारसी पुत्र चड्डा पत्नी मचकू के पुत्र भोला द्वारा कारित एवं श्री यशोदेवसूरिपट्टाधिकारी नन्नसूरि द्वारा प्रतिष्ठित श्री पद्मप्रभ धातुबिंब शाह मोतीलाल हीराचन्द के घर देवालय में विराजमान हैं। [३]

खम्भात—वि० सं० १४०८ बैसाख शु० ५ गुरुवार की पल्ली० श्रे० समेत द्वारा पिता खेता, माता आल्हू के श्रेयार्थ कारित एवं श्री चैत्र गच्छीय श्री पद्मदेव सूरि पट्टालंकार श्रीमानदेवसूरि द्वारा प्रतिष्ठित श्री शान्तिनाथ धातुबिंब कुम्भार पाड़ा के श्री शीतल नाथ जिनालय में विराजमान है। [४]

इसी मंदिर में वि० सं० १३४३ माघ शु० १२ पल्ली० सं० हरिचन्द के पुत्र सं० तेजपाल द्वारा माता पाल्हणदेवी के श्रेयार्थ

४-५ प्राचीन लेख संग्रह (विद्याविजय जी) ले० ६५, २३१.
६. प्रतिष्ठ लेख संग्रह (विनय सागर जी) ले० १७०
७-९ जै० प्र० लि० सं० भा० १० ले० ४६२-४६३

कारित एवं प्रतिष्ठित श्री रत्नमय पार्श्वनाथ धातुबिम्ब विराजमान हैं।[५]

नासिक्यपुर—पल्ली० शाह ईसर के पुत्र माणिक पत्नी श्री० नाऊ के पुत्र शाहकुमारसिह ने श्री चन्द्र प्रभ जिनालय का जीर्णोद्धार करवाया था।[६]

अर्बुदतीर्थ—वि० सं० १३०२ ज्येष्ठ शु० ६ शुक्रवार की पल्ली० भा० धणदेव पत्नी भा० धणदेवी के पुत्र भा० वागड़ पत्नी द्वारा कारित एवं प्रतिष्ठित प्रतिमा श्री नेमनाथ जिनालय के श्री शांतिनाथ मंदिर (कुलिका) में विराजमान है।

बीकानेर—वि० सं० १३७३ वैशाख शु० ७ सोमवार की पल्ली० से० पासदत्त द्वारा से० नरदेव के श्रेयार्थ कारित एवं चैत्र गच्छीय श्री पद्मसूरि द्वारा प्रतिष्ठित श्री शांतिनाथ प्रतिमा श्री चिंतामणी (चडवीसरा) जिनालय में विराजमान है।

इसी नगर के श्री महावीर मंदिर में वि० सं० १३६० वैशाख कृ० ११ पल्ली० श्रे० ठ० मेघा द्वारा पिता अभयसिह माता लक्ष्मी के श्रेयार्थ कारित अम्बिका मूर्ति विराजमान है।[३]

बूंदी—वि० सं० १५३१ माघ शु० ५ शुक्रवार को पल्ली० शाह राज पुत्र धर्मसी के पुत्र प्रियंवर द्वारा कारित एवं वृहद्

प्राचीन जैन लेख संग्रह (जिन० वि०) लेखांक ४७७,५७ (गिरनार प्रशस्ति ५)

३-६ जै० ध० प्र० ले० सं० भा० २ लेखांक १३१,२२८,५५०,६५५

७—विविध तीर्थ कल्प पृ० ५४।

गच्छीय श्री शान्तिभद्रसूरि द्वारा प्रतिष्ठित श्री विमलनाथ पंचतीर्थी श्री पार्श्वनाथ मंदिर में विराजमान है।[४]

हिन्डोन—वि० सं० १७९३ वैसाख शु० ३ शनिश्चर की नगरवासी के पल्ली० नौलाठिया गोत्रीय श्री लक्ष्मीदास पत्नी धौकनी के पुत्र शाह देवीदास द्वारा कारित एवं विजय गच्छीय श्री तिलकसागर प्रतिष्ठित श्री ऋषभदेव प्रतिमा जिसकी प्रतिष्ठा हिन्डोंन में ही हुई थी। यह लेख श्री मन्दिर जी के दरवाजे पर है।

उक्त शाह देवीदास ने उक्त गच्छीय आचार्य से वि० संवत १७९६ फा० शु० ७ शुक्रवार को श्री पार्श्वनाथ प्रतिमा प्रतिष्ठित करवाई थी। वह प्रतिमा भी उक्त मंदिर में ही विराजमान है।[५]

आगरा—वि० सं० १३९६ की पल्ली० श्रे० भीम के पुत्र शैल और नेल द्वारा कारित एवं राजगच्छीय हंसराजसूरि द्वारा उपदेशित श्री शांतिनाथ प्रतिमा श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ मंदिर में विराजमान है।

१—अर्बुद प्रा० जै० लेख सं० ले० ४९२
२-३—वीकानेर जै० ले० संग्रह० ले० १५३९
४—प्रतिष्ठा ले० सं० (विनय सागर जी) प्र० भा० ले० ७३८
५—प्रथम मूर्त्ति लेख में 'वास नागर नगरे' और द्वि० मूर्ति लेख में 'हमाणा वसे' पढ़ा गया है।
६—श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ मंदिर भंडार० आगरा० ले० १८

भरतपुर—सं० १८२६ वर्षे मिती माघ बदि ७. गुरुवार डीग-नगरे महाराजे केहरीसिंह राज्य विजय गच्छे महा भट्टारक श्री पूज्य श्री महानंदसागर सूरिभिस्त द्दपदत्त पल्लीवाल वंश डगिया गोत्रे हरसाणा नगर वासिना चौधरी जोध राजेन प्रतिष्ठा करापितायां।

यह श्री मुनिसुव्रत स्वामी बिम्ब मूलनायक रूप में श्री जैन श्वेताम्बर पल्लीवाल मंदिर जती मोहल्ला भरतपुर में विराजमान है। इसी मंदिर में सर्वधातु की पंचतीर्थी जी पर निम्न लिखित लेख है:—

॥ सिधि ॥ संवत १५५४ बैसाख सुदी ३ पल्लीवाल ज्ञातिय संघ घलित सूना संघना । श्री पार्श्व नाथ विम्ब कारितं...........।

सांथा (राजस्थान)—श्री शारदाय नमः श्री गुरुभ्यो नमः संवत १७०८ वर्षे फागुन सुदी १२ भृगुवासरे रिषधीलाल जैन जाति पल्लीवाल के भया लालचन्द लि० तसु सिष मोहन लिः तसु सिष दशरथ तसु सिष चेतसिः सवत १७०८ फागुन सुदी १२।

यह जैन श्वे० पल्लीवाल मन्दिर सांथा (राजस्थान) का लेख है :

उपरोक्त प्रतिमा लेखों के अतिरिक्त कई प्रतिमा लेख और भी प्राप्त किये जा सकते हैं; परन्तु वे अक्षरान्तरित होकर प्रकाशित नहीं हुए। इस अभाव में जो और जितने अबतक प्राप्त हो सके हैं उनके आधार पर कुछ पल्लीवाल कुल एवं व्यक्तियों

का मात्र नाम परिचय ही हो सका है। परन्तु इतना सुस्पस्ट है कि पल्लीवाल ज्ञाति द्वारा कारित एवं प्रतिष्ठित श्वेताम्बर प्रतिमाओं से पल्लीवाल अपेक्षाकृत श्वेताम्बरीय प्राचीनतर सिद्ध होते हैं।

श्वेताम्बरीय पल्लीवाल गच्छ पल्लीवाल ज्ञाति का प्रति बोधक माना जाता है और अगर नहीं भी माना जाय तो भी पल्लीवाल ज्ञाति जैन श्रावकत्व सम्बंधी प्राचीनतम प्रमाण श्वेताम्बरीय ही उपलब्ध होते हैं; अतः मेरे विचार से पल्लीवाल ज्ञाति प्रारंभ में श्वेताम्बर थी और अब श्वेताम्बर मूर्त्ति पूजक, स्थानकवासी और दिगंबर तथा वैष्णव मतानुयायी भी है।

पल्लीवाल ज्ञाति द्वारा विनिर्मित कई जैन मंदिर हैं जो भारत के विभिन्न भाग विशेषतः राजस्थान, संयुक्त प्रदेश, मालवा और मध्य भारत में हैं। उनकी यथा प्राप्त सूची नीचे दे रहा हूँ।

जयपुर	भरतपुर	अलवर
खंडीप	डीग	भोजपुर
हिंडौन	कुम्हेर	हरसाणा
शेरपुर	व्याना	अलवर
झारेड़ा	वैर	वन्दोखर
कर्मपुरा	समराया	समोची

सलावद	सिरस	बड़ौदाकानका
खेडला	अलीपुर	मलावली
सांथा	डेहरा	परवेणी
मंडावर	पींघौरा	
श्री महावीरजी	रुदावल	
(चांदनगांव)	भरतपुर	
करौली		
रसीदपुर		
कूजेला		
रानोली		

आगरा

किरावली	रायभा	मिढ़ाखुर
रुनकुता	कठवारी	आगरा

नोट—मुरेना के पल्लीवाल जैन मंदिरों के तथा छीपा पल्लीवालों के और गुर्जर भूमियों के मन्दिरों के स्थानों के नाम उक्त सूची में नहीं दिये जा सके हैं।

पल्लीवाल जैन महासमिति

लगभग ६८ वर्ष पूर्व आगरा के विद्यालयों में शिक्षण-प्राप्त करने वाले पल्लीवाल ज्ञातीय कुछ विद्यार्थियों ने मिलकर अपनी लघु जाति में फैली हुई फूट, अपव्यय, अशिक्षा, कई घातक सासमाजिक प्रथायें, असंगत रुढ़ियें, तड़े, दलबंदियें, प्रान्त प्रभेद, भोजन और कन्या व्यवहार सम्बन्धी अनुचित प्रतिबंधों को यथाशक्ति दूर करने की दृष्टि से एवं समाज में आर्थिक उन्नति लाने के दृष्टिकोणों को समक्ष कर एक "पल्लीवाल धर्म ववर्धनी क्लब" नाम से उन्नत शील समिति सन् १८९२ दिसम्बर ११ को आगरा में निर्मित की ! आज जो इस ज्ञाति में जागृति प्रदर्शित होती है उसका अंकुर उक्त समिति में उत्पन्न हुआ था ! समिति बनाने वाले स्मरणीय विद्यार्थी निम्न थे :—

श्री कन्हैया लाल	श्री विहारीलाल
,, जादोनाथ	,, भिकरीमल
,, राम किशन	,, कालूराम
,, सूरज भान	,, नारायनलाल
,, दीपचंद	,, मुर्लीधर
,, निहाल चंद	,, मुर्लीधर जी कलकता वाला
,,वुलाकी राम (द्वि० मंत्री	,, फतेह लाल

श्री बालक राम ,, तारा चंद अजमेर वाला
,, नारायणसिंह रायभावाले ,, कुंजलाल बुढ़वारी
,, ताराचंद रायभा वाले ,, तारा चंद
,, छोटे लाल ,, उमराव सिंह
,, परशादी लाल ,, बृजलाल
,, हज़ारी लाल ,, राम प्रसाद
,, रतन लाल ,, लल्लू राम -प्रथम मंत्री
,, चन्द्र भानु ,, नंद किशोर
,, गणेशी लाल
,, साँवल दास
,, रामलाल

समिनि के सदस्यों में प्रायः सर्व विद्यार्थी मैट्रिक, एफ़. ए., बी.ए., एम.-ए., कक्षाओं के लड़के थे। उन दिनों में आर्य समाज आन्दोलन वेग पर था। इन सर्व विद्यार्थियों को आर्य समाज के आये दिन होने वाले भाषणों, शास्त्रार्थो, समाज एवं देश सम्बंधी कतिपय सुधार-विचारों से प्रेरणा, भावना प्राप्त हुई और इन सर्व विद्यार्थियों ने कुछ अन्य सज्जनों के सहयोग-सम्मति से उपरोक्त समिति स्थापित्त करके अपनी बिखरी हुई जाति को एक सूत्र में बांधने की, परस्पर भोजन-कन्या व्यवहार चालू करने की यत्न धारा प्रारम्भ की।

क्लब की प्रथम बैठक बरारा में सन् १८९३ नवम्बर २४ को

लाला गणपतिलालजी की भगिनी के विवाह पर हुई। द्वितीय बैठक सन् १८६४ मार्च १० को श्री गड्डुरमल के विवाह पर हुई। तृतीय स्मरणीय बैठक ज्ञाति में प्रसिद्ध ला० गणेशीलालजी के क्रियावर पर हुई। तात्पर्य कि ऐसे ही समाज-सम्मेलन के अवसरों पर क्लब की बैठकें होती गईं। अब क्लब की ओर से एक मासिक पत्र भी चालू किया गया। जिसमें प्राय: रस्म-रिवाज, प्रथाः रूढ़ियों सम्बंधी ही विवरण रहा करते थे। धीरे धीरे यह क्लब अपनी जाति के विद्यार्थियों को छात्र-वृत्ति भी रु० २) ५) ७) १०) १५) मिडिल से एम० ए० तक क्रमश: निर्धारित ढंग से देने लगा।

प्रथम में जब बा० कन्हैयालाल आदि अति उत्साही युवक नौकरी करने के लिये दूर चले गये तो क्लब कुछ शिथिल पड़ने लगा था, परन्तु बाबू जादोनाथ के उत्साह एवं प्रयत्नों से वह बन्द होने से वच गया। आगे तो इसके सदस्यों में से कुछ ही वर्षों में कुछ लोग राजकीय अच्छे पदों पर पहुँच गये और उनका समाज पर अच्छा प्रभाव पड़ने लगा। श्री बुलाकीरामजी प्रयाग में ऐज्यूकेशन-सुपरिन्टेन्डेन्ट हो गये। मा० कन्हैयालालजी का प्रभाव तो दिनों दिन फैल ही रहा था। विपेशता यह थी कि सभा के सदस्य वड़े होनहार, उत्साही युवक थे और वे दूर दूर नगरों के थे। वे अपने २ घरों में, अपने प्रभाव एवं आधीन होने वाले विवाह, क्रियावर, छोटे-बड़े भोजों के अवसरों पर क्लव के उद्देश्य के अनुसार ही करने, कराने के लिये दृढ़ प्रतिज्ञ थे। अतः

कुछ ही वर्षों में वह क्लब सर्वत्र एवं समस्त ज्ञाति की एक प्रतिनिधि सभा का रूप ग्रहण कर गया। अब यह प्रतीत होने लगा कि इसको 'पल्लीवाल महा समिति का रूप दे दिया जाय और बड़े पैमाने पर जाति सुधार के कार्य किये जावें।

जैन पल्लीवाल कान्फरेन्स

क्लब की अन्तिम बैठक आगरा के नसिया जी में ज्ये० कृ० ७ वि० सं० १९७७ को लाला चिरंजीलाल जी के सभापतित्व में हुई। मा० कन्हैयालालजी इस सभा के कोषाध्यक्ष एवं बाबू श्यामलालजी बी० ए० स्वागताध्यक्ष थे। दूर २ के स्त्री, पुरुष लगभग १०००-१२०० की संख्या में उपस्थित हुए थे। कई सुधार सम्बंधी प्रस्ताव स्वीकृत हुए। विशेष उल्लेखनीय प्रस्ताव यह था कि मुरेना मध्य-भारत के पल्लीवाल बंधुओंसे कन्या व्यवहार प्रारम्भ किया जाय। इस उद्देश्य की पूर्ति में एक समिति ला. भिकरीमलजी ला० दौलतरामजी, सूरजभानुजी, चन्द्रभानुजी इन चार सदस्यों की विनिर्मित्त की गई और उन्हें मुरेना के पल्लीवालों के गोत्र, नख, धर्म सम्बधी विवरण तुरन्त तैयार करके सभा के समक्ष प्रस्तुत करने को कहा गया।

द्वितीय उल्लेखनीय प्रस्ताव के अनुसार मुरेना, मौजपुर, आगरा, भरतपुर, हिंडौन, जयपुर, मण्डावर में सभा की शाखायें खोली गईं और उनके मंत्री, कोषाध्यक्ष नियुक्त किये गये।

सर्व सम्मति से क्लब को पल्लीवाल जैन कान्फरेन्स का नाम दे दिया गया और आगामी अधिवेशन तक सभा के सभापति मा० कन्हैयालालजी सर्व सम्मति से चुने गये। यह कान्फरेन्स का प्रथम अधिवेशन था। आगे सभा के कुछ महत्व पूर्ण अधिवेशनों के सम्बंध में परिचय दिया जा रहा है।

महत्वपूर्ण द्वितीय अधिवेशन

सन १९२५ के नवम्बर २५ को अछनेरे में सभा का द्वितीय अधिवेशन हुआ। उसमें मुरेना मध्य भारत के पल्लीवाल बंधु भी सम्मिलित हुए। लगभग दूर २ के ४६ ग्राम, नगरों से स्त्री, पुरुष आकर सम्मिलित हुए। जांच समिति का विवरण पढ़कर लाला दौलतरामजी ने सुनाया। सर्व सम्मति से मुरेना मध्य-भारत के पल्लीवाल बंधुओं के साथ कन्या व्यवहार प्रारम्भ कर देने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ! पंडित चिरंजीलालजी को ज्ञाति भूषण की उपाधि प्रदान की गई। विवाहों में वेश्यानृत्य बन्द किया गया आदि कई बड़े महत्त्व पूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत हुए। सभा पंडित चिरंजीलालजी के सभापतित्व में हुई थी।

महत्वपूर्ण तृतीय अधिवेशन

यह अधिवेशन फिरोजाबाद में राय साहब कल्याणरायजी के सभापतित्व में सन् १९३३ मार्च १८ वि० सं० १९८६ चै० कृ०

७ को बड़े उत्साह से हुआ। इसमें छीपापल्लीवालों के साथ भोजन और कन्या व्यवहार प्रारम्भ करने का प्रस्ताव स्वीकृत किया गया।

महत्वपूर्ण चतुर्थ अधिवेशन

यह अधिवेशन गंगापुर वासी ज्ञाति शिरोमणि सेठ रामचन्द्र जी के सभापतित्व में सन् १९३५ अप्रेल १६ को हिण्डौन में हुआ। इसमें ज्ञाति के इतिहास पर प्रकाश डाला गया और संगठन को आगे बढ़ाने के संबंध में विचार विमर्श हुए। रामचंद जी के पुत्र रिद्धिचन्द M. L. A., गंगापुर वालों की जयपुर में भी रिद्धिचन्द जगन्नाथ के नाम से लखपती फर्म हैं।

सभा का सन् १९३६ का अधिवेशन ता ३० जून को अलवर में हुआ। इसमें ज्ञाति में प्रचलित रश्म रिवाज सम्बंधी एक पुस्तक प्रकाशित करके घर २ पहुँचाने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

सभा के आगे के अधिवेशन खेरली, और महावीर जी में हुए। इन अधिवेशनों में छीपा पल्लीवाल एवं मुरेना के पल्लीवालों के साथ वैवाहिक संबन्ध स्थापित करने के जो विरोध उत्पन्न हो रहे थे, धीरे २ उनको दूर करने का प्रयत्न किया गया।

क्लब ने सभा को जन्म दिया और सभा ने जाति को एक रूप में बांधा। क्लब और सभा के समस्त कार्यकर्त्ता पल्लीवाल ज्ञाति के इतिहास में स्मरण करने योग्य एवं धन्यवाद के पात्र हैं।

लाला वंशीधर जी का नाम तो विशेषतः उल्लेखनीय हैं। इस सच्चे जाति सेवक सज्जन ने ग्राम-ग्राम भ्रमण करके अत्यन्त कठोर श्रम करके एक ही वर्ष में जनवरी सन् १६१६ से दिसम्बर १६१६ तक ही जन-गणना कार्य तूफानी वेग से सम्पन्न कर डाला। जन गणना के कठिन श्रम से ये इतने असक्त हो गये थे कि सन् १६१७ में ही इनका देह-त्याग हो गया। जन गणना का समस्त व्यय पेची निवासी लाला गोपीलाल जी ने सहर्ष उठाया था। आगरा निवासी ला० सूरजभानजी प्रेमी ने बड़े श्रम से जन-गणना के कोष्टक तैयार किये थे। सन् १६२० में मा० कन्हैया लाल के द्वारा जन गणना का विवरण प्रकाशित किया गया समिति का जन-गणना का कार्य एक महत्व पूर्ण कार्य कहा जा सकता है। इससे ज्ञाति की समस्त स्थितियों का एक चित्र तैयार कर लिया गया और उसके आधार पर जिससे कई सुधार सम्भव और सहज हो सके।

लाला ज्ञानचन्द-खेरली सभा के सभापति चुने गये थे! इनका गौत्र सलावदिया है। ये बड़े उत्साही एवं सुधारक विचारों के हैं।

सेठ गोपीलाल जी ये पेची के निवासी थे। श्री महावीर जी का अधिवेशन इनके सभापतित्व में हुआ था।

पल्लीवालज्ञाति का अन्य जैन ज्ञातियों में स्थान

जैन ज्ञातियों में ओसवाल, श्रीमाल, पोरवाल, खण्डेलवाल, बघेरवाल अगरवाल आदि कई ज्ञातियां हैं उनमें पल्लीवाल ज्ञाति भी एक है। पल्लीवाल ज्ञाति वर्ग में ही जंसवाल और सेलवाल अति छोटी दो ज्ञातियां भी सम्मिलित है। जैन ज्ञातियों में मेड़तवाल, दिशावाल, पल्लीवाल, नागरवाल, वागड़ी अति छोटी ज्ञातियां हैं। फिर धर्म और अर्थ के क्षेत्रों में अपने अपने आकार के अनुसार सर्व ज्ञातियां अपना अपना प्रभुत्व रखती आई हैं। यह स्वभावः मानना पड़ता है कि जिसके सौ हाथ उसके सौ साथ। इस दृष्टि से ओसवाल, श्रीमाल, पोरवाल,अगरवाल ज्ञातियां अधिक समुन्नत रहीं। राज्य, व्यापार, तीर्थ धर्मस्थानों में इनका ही बोलबाला रहा। परन्तु जब समानुपात की दृष्टि से विचार करेंगे तो लघु ज्ञातियों का पलड़ा वजन में झुकता दिखाई देगा। यह लघु इतिहास इसके प्रमाण में प्रस्तुत किया जा सकता है। इस ज्ञाति में श्रेष्ठिनेमड़ जेसा धनपति, दिवान जोधराज जैसा धर्मिष्ठ, आचार्य धर्मधोषसूरि जेसे महाप्रभावक युगप्रधान हो गये हैं। जिनसे साहित्य, तीर्थ, धर्मक्षेत्र सबही शोभा को प्राप्त हुए हैं।

अन्य ज्ञातियाँ संख्या में बढ़ी और यह ज्ञाति नहीं बढ़ी इस सम्वंध में एक बात जो उल्लेखनीय है वह यह है कि ओसवाल, श्रीमाल, पोरवाल जैसी ज्ञातियों का निर्माण कई शताब्दियों तक होता रहा और उनका वर्ग अधिकाधिक बढ़ता ही रहा। इन ज्ञातियों ने अपने प्रथम मूलस्थान को ही अपना रूढ़जन्मदाता नहीं माना। जो जैन बने और इनमें जो मिलना चाहते थे उनको इन्हों ने सहर्षस्वीकार किया एवं नगर अथवा ग्राम से इनका आज का कलेवर नही बना है। संभव है यह बात पल्लीवाल वैश्य ज्ञाति के निकट नहीं रही। जो पालीं से जैनधर्मी बने वेही पल्लीवाल वैश्य जैन रहे और उनकी बढ़ती घटती सन्तानें ही आज का पल्लीवाल ज्ञाति का आकार बना पाई हैं और फलतः इसमें पश्चात् बनने वाले जैन कुलों का समावेश नहीं होने के कारण यह ज्ञाति छोटी रही और रह रही हैं। फिर भी सर्व जैन ज्ञातियों में इसका बराबरी का स्थान है और सम्मान हैं।

ओसवाल, श्रीमाल, पोरवाल, बड़ी बड़ी ज्ञातियां हैं। इन ज्ञातियों ने अपने अपने कुलों को यथा शक्ति यथावसर उन्नति करने में सहाय की है। श्रीमाल, पोरवालों का क्षेत्र गुर्जरभूमि बनी और यही कारण है कि श्रीमाल और पोरवाल गुर्जरभूमि में आज भी अधिक संख्या में हैं और ये ज्ञातियां वहाँ के राजघरों में, राज्यों में वर्चस्व रखती आई हैं। जो किसी भी इतिहासकार से अज्ञात नहीं है बल्कि यों कहा जा सकता है कि इन जैन ज्ञातियों

के इतिहास में गुर्जरदेश, राज्यों का समूचा इतिहास पढ़ा जा सकता है। गुर्जरभूमि का बड़ा से बड़ा राजा और अधिक से अधिक विस्तारवाला साम्राज्य इन पर निर्भर रहा है। इसी प्रकार राजस्थान मालवा के देशी राज्यों में ओसवालों का प्रभाव रहा। पल्लीवाल ज्ञाति को राजस्थान, मालवा के देशी राज्यों में अपना प्रभुत्व जमाने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ। परिणाम इसका यह रहा है कि ज्ञाति छोटा छोटा वाणिज्य कृषि करती रही। जाति को अधिक उन्नतिशील बनाने के हेतु ही पल्लीवाल क्लब की आगरा में स्थापना हुई थी और वह उन्नतशील रह कर अन्त में 'पल्लीवाल महासमिति,' का रूप ग्रहण कर सकी थी। इसने जो क्रांति की और ज्ञाति में जो संगठन उत्पन्न किया उसके सम्बंध में सम्बंधित प्रकरण में कहा जा चुका है।

अब तो इस ज्ञाति में पढ़े-लिखे लोगों की संख्या अच्छी बढ़ गई है और बढ़ती जा रही है। अर्थ के क्षेत्र में भी अब इसने अच्छी उन्नति की है।

इस ज्ञाति में भी अन्य जैन ज्ञातियों की भांति जैन धर्म के सर्व सम्प्रदायों की मान्यतायें प्रचलित हैं। जैसे श्वेताम्बर मूर्तिपूजक, स्थानकवासी, दिगम्बर आदि।

सन् १९२० में मा० कन्हैयालाल जी, ने पल्लीवाल ज्ञाति की जन गणना का विवरण प्रकाशित किया था। उसका एक

संक्षिप्त कोष्टक इस लघु इतिहास में यथा प्रसंग दिया गया है। उससे ज्ञाति में पुरुष, स्त्री की संख्या, शिक्षा, वैवाहिक-अविवाहित, विधुर, विधवा एवं व्यवसाय और नौकरी आदि स्थितियों का विशद परिचय हो जाता है। आज उस बात को ४० वर्ष का समय व्यतीत हो गया। परन्तु, अन्य जैन ज्ञातियों के साथ अगर इस लघु जैन ज्ञाति का भाग्य भी बंधा हुआ माना जाय तो उनकी भांति अभी इस वैज्ञानिक एवं अर्थोन्नति के युग में ठेट ही बैठी हुई है। अपने संकुचित क्षेत्र से निकल नहीं पा रही है। ज्ञाति के अागेवानों पर इसकी उन्नति का उत्तरदायित्व है। वे सोचें समझें और मार्ग में पड़ी हुई विघ्न बाधाओं से झूझकर अपनी ज्ञाति को आगे बढ़ा ले चलें। इस लघ इतिहास के प्रकाशन का मुख्य हेतु यही है कि ज्ञाति अपने भूत और वर्त्तमान को पढ़ें और समझें और भविष्य के प्रति जागरूक बनें और भारत की उन्नतशील ज्ञातियों से कंधा मिला कर आगे बढ़े।

पल्लीवालगच्छ पट्टावलि

प्रथम चौबीस तीर्थंकरों और ग्यारह गणधरों के नाम लिखकर आगे पाटानुक्रम इसी प्रकार लिखा है।—

(१) श्री स्वामी महावीर जी रै पाटि श्री सुधर्म्म

(२) तिण पट्टे श्री जम्बूस्वामीं

(३) तत्पट्टे श्री प्रभवस्वामी

(४) श्री शय्यंभवसूरि

(५) तत्पट्टे श्री जसोभद्रसूरि

(६) तत्पट्टे श्री संभूतविजय

(७) तत्पट्टे श्री भद्रबाहु स्वामी

(८) तत्पट्टे, तिणमहे भद्रबाहु री शाखान वधी, श्री स्थूलिभद्र

(९) तत्पट्टे श्री सुहस्तिसूरि, २ काकंद्याकोटि सूरिमंत्र जाप्याँ चात् कोटिक गण। तिहाँरै पाटिसुप्रतिबंध ९ तियाँरै गुरूभाई सुतिणरा शिष्य दोय विज्जाहरी१, उच्चनागरी२ सुप्रतिबधपाटि९ तिणरी शाखा २ तिणाँरा नाम मझमिला १, वयरी २।

(१०) वयरी रै पाटि श्री इन्द्रदिनसूरि पाटि

(११) तत्पट्टे श्री आर्य दिन्नसूरि पाटि

(१२) तत्पट्टे श्री सिंहगिरिसूरि पाटि

(१३) तत्पट्टे श्री वयरस्वामि पाटि

(१४) तत्पट्टे तिणांरी शाखा २ तिणरा नाम प्रथम श्री वयरसेन पाटि १४ बीजो श्री पद्म२ तिणरी नास्ति। तीजो श्री रथसूरि पाटि श्री पुसिगोर री शाखा बीजी वयरसेन पाटि

(१५) तत्पट्टे श्री चन्द्रसूरि पाट १५ संवत् १३० चन्द्रसूरि

(१६) संवत् १६१ (१६१) श्री शांतिसूरि थाप्यापट्टे १६ श्री संवत् १८० स्वर्ग श्री शान्तिसूरि पाटि १६ तिणरे शिष्य ८ तिहारा नाम श्री महेन्द्रसूरि १ तिणथी मथुरावाल गच्छ, श्री शालिगसूरि श्री पुरवालगच्छ, श्री देवेन्द्रसूरि, खंडेवालगच्छ, श्री आदित्यसूरि सोभितवालगच्छ, श्री हरिभद्रसूरि मंडोवरागच्छ, श्री विमलसूरि, पत्तानवालगच्छ, श्री वर्द्धमानसूरि भरवछेवालगच्छ ७ श्री मूलपाटे

(१७) श्री जसोदेवसूरिपाटि १७ संवत् ३२६ वर्षे वैशाख सुदि ५ प्रल्हादि प्रतिवोधिता श्री पालिवालगच्छ थापना संवत् ३६० (?) स्वर्ग

(१८) श्री नन्नसूरि पाटि १८ संवत ३५६ स्वर्ग (३६५)

(१६) श्री उजोअणसूरि पाट १६ संवत ४०० स्वर्ग

(२०) श्री महेश्वरसूरि पाटि २० संवत ४२४ स्वर्ग (४४०)

(२१) श्री अभय(अजित) देवसूरि पाटि २१ संवत ४५० वर्षे स्वर्ग (४४०)

(२२) श्री श्रामदेवसूरि पाटि २२ संवत ४५६ स्वर्ग

(२३) श्री शाँतिसूरि पाटि २३ संवत ४५ (९१) ५ स्वर्ग

(२४) श्री जस्योदेवसूरि पाटि २४ संवत ५३४ स्वर्ग

(२५) श्री नन्नसूरि पाटि २५ संवत ५७० स्वर्ग

(२६) श्री उजोश्रणसूरि पाटि २६ संवत ६१६ स्वर्ग

(२७) श्री महेश्वरसूरि पाटि २७ संवत ६४० स्वर्ग

(२८) श्री श्रभय(श्रजित्त) देवसूरि पाटि २८ संवत ६८१ स्वर्ग

(२९) श्री श्रामदेव सूरि पाटि २९ संवत्त ७३२ स्वर्ग

(३०) श्री शांतिसूरि पाटि ३० संवत्त ७६८ स्वर्ग

(३१) श्री जस्योदेवसूरि पाटि ३१ संवत ७९५ स्वर्ग

(३२) श्री नन्नसूरि पाटि ३२ संवत ८३१ स्वर्ग

(३३) श्री उजोयणसूरि पाटि ३३ संवत ८७२ स्वर्ग

(३४) श्री महेश्वरसूरि पाटि ३४ संवत ९२१ स्वर्ग

(३५) श्री श्रभय(श्रजित्त) देवसूरि पाटि ३५ संवत ९७२ स्वर्ग

(३६) श्री श्रामदेवसूरि पाटि ३६ संवत ९९९ स्वर्ग

(३७) श्री शांतिसूरि पाटि ३७ संवत १०३१ स्वर्ग

(३८) श्री जस्योदेवसूरि पाटि ३८ संवत १०७० स्वर्ग

(३९) श्री नन्नसूरि पाटि ३९ संवत १०९८ स्वर्ग

(४०) श्री उज्ज़ोयणसूरि पाटि ४० संवत ११२३ स्वर्ग

(४१) श्री महेश्वरसूरि पाटि ४१ संवत ११४५ स्वर्ग

(४२) श्री अभय(अजित), देवसूरि पाटि ४२ (संवत) श्री मलधारी श्री अभयदेवसूरि आदि मिल्या तापछैं अजितदेव ठांमि श्रीअभयदेवसूरि तहांणां पाटि ४२ संवत ११६६ स्वर्ग

(४३) श्री आमदेवसूरि पाटि ४३ संवत ११६६ स्वर्ग

(४४) श्री शाँतिसूरि पाटि ४४ संवत १२२४ स्वर्ग

(४५) श्री जस्योदेवसूरि पाटि ४५ संवत १२३४ स्वर्ग

(४६) श्री नन्नसूरि पाटि ४६ संवत १२३६ स्वर्ग

(४७) श्री उजोयणसूरि पाटि ४७ संवत १२४३ स्वर्ग

(४८) श्री महेश्वरसूरि पाटि ४८ संवत १२७४ स्वर्ग

(४९) श्री अभय(अजित) देवसूरि पाटि ४९ संवत १३२१ स्वर्ग

(५०) श्री आमदेवसूरि पाटि ५० संवत् १३७४ स्वर्ग

(५१) श्री शांतिसूरि पाटि ५१ संवत १४४८ स्वर्ग

(५२) श्री जस्योदेवसूरि पाटि ५२ संवत १४८८ स्वर्ग

(५३) श्री नन्नसूरि पाटि ५३ संवत १५३२ स्वर्ग

(५४) श्री उजोयणसूरि पाटि ५४ संवत १५७२ स्वर्ग

(५५) श्री महेश्वरसूरि पाटि ५५ संवत १५६६ स्वर्ग

(५६) श्री अभयदेव(अजित) सूरिपाटि ५६ नवी गच्छ थापना कीधो गुरां सा (थे) क्लेस कीधो, कोटि द्वेष करि क्रिया उद्धार कीधो संवत १५६५ स्वर्ग

(५७) श्री आमदेवसूरि पाटि ५७ संवत १६३४ स्वर्ग

(५८) श्री शांतिसूरि पाटि ५८ संवत १६६१ स्वर्ग

(५६) श्री जस्योदेवसूरि पाटि ५६ संवत १६६२ स्वर्ग

(६०) श्री नन्नसूरि पाटि ६० संवत १७१८ स्वर्ग

(६१) श्री विद्यमान भट्टा (रक) श्री उजोअणसूरि पाटि ६१ संवत १६८७ वाचक पदं संवत १७२८ ज्येष्ठ सुदि १२ वार शनिदिने सूरिपदं विद्यमान विजय राज्ये।

(सं० १७३४ स्वर्ग)

लेखक प्रशस्ति—संवत १७२८ वर्षे श्री शालिवाहन राज्ये शाके १५९३ प्रवर्त्तमाने श्री भाद्रपद मास शुभ शुक्लपक्षे नवमी ९ दिने वार शनिदिने श्रीमत् पल्लिकीयगच्छे भट्टा० श्री शांतिसूरि तत्पट्टे भ० श्री श्री ७ जस्योदेवसूरि संताने श्री श्री उपाध्याय श्री महेन्द्रसागर तत्शिष्य मु० श्री जयसागर शिष्य चेला परमसागर वाचनार्थे श्री गुरांरो पट्टावली लिख्यतं ॥ श्री ॥

उपरोक्त पट्टावली अप्रकाशित है। यह पट्टावली बीकानेर बड़ा उपाश्रय के बृहत् ज्ञान भण्डार की सूची बनाते समय एक गुटकाकार पुस्तक के रूप में श्री अगरचंदजी नाहटा जी को प्राप्त हुई थी। गुटका उसी गच्छ के यतियों द्वारा लिखा हुआ है। उसी गुटके की नकल करके श्री नाहटा जी ने अपने लेख 'पल्लीवाल गच्छ पट्टावली' में श्री आत्मानंद अर्धशताब्दी ग्रंथ में उसे प्रकाशित की है।

१६ वें श्री शांतिसूरि से २२ वें श्री आमदेवसूरि पर्यंत सातों नाम आगे के पट्टधरों के लिये क्रमशः रूढ़ि बनकर चलते रहे हैं। नामों की रूढ़ता अन्य गच्छों में भी पायी जाती है।

श्री नाहटा जी ने अपने लेख में पट्टावली की प्रामाणिकता के सम्बंध में यों लिखा है :—

पल्लीवाल गच्छ की प्रस्तुत पट्टावली चन्द्रसूरि तक तो अन्य गच्छीय पट्टावलियों से मिलती हुई है, पर इसके आगे सर्वथा स्वतंत्र है।

नं० ४४ शांतिसूरि का सं० १२२४ में स्वर्गवास लिखा है, परन्तु क्षेमशेखर शिष्य उदयशेखरकृत 'जयतारण विभानजिन-स्तवन(गा० २१) में, इन्होंने सं० १२३६ माघ सुदि १३ को राजसी की भराई हुई इस प्रतिमा की प्रतिष्ठा (शांतिसूरि जी ने) कराई थी ऐसा उल्लेख है; यथा संभव शांतिसूरि उपरोक्त ही होंगे।

नं० ४६ अभयदेवसूरि का संवत १३२१ में स्वर्ग (वास) लिखा है; परन्तु 'जैन धातु प्रतिमा लेख संग्रह लेखांक ८६६ में इनका (प्रतिष्ठा) सं० १३८३ मा० सुदि ११ लेख उपलब्ध है।

नं० ५१ शांतिसूरि का सं० १४४८ में स्वर्गवास लिखा है; परन्तु पट्टावली-समुच्चय पृ० २०५ में संवत १४५८ का इनका लेख है। तथा श्री नाहटा जी के स्वयं के संग्रह में भी संवत १४५६ का लेख है।

नं० ५२ यशोदेवसूरि का स्वर्गवास सं० १४८८ लिखा है; परन्तु संवत १५०१-७-११ तक के आप के द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियों के लेख उपरोक्त दोनों ग्रंथों में पाये जाते हैं।

पल्लीगच्छ अथवा पल्लीवाल गच्छीय

आचार्य-साधुप्रतिष्ठित

प्रतिमा लेख

पाली में पूर्णभद्र वीर जिनालय की महावीर एवं आदिनाथ प्रतिमाओं पर वि० सं० ११४४ और ११५१ के लेख है। जिनमें 'पल्लीकीय प्रद्योतनाचार्यगच्छे', पद का प्रयोग हुआ है।

अभयदेवसूरि—सं० १३८३ माघ शु० १० सोम० (जै० धा० प्र० ले० भा० २ ले० ८६६)

आमदेवसूरि —सं० १४३५ फा० शु० २ शुक्र (प्रतिष्ठा ले० संग्रह—विनयसागरजी ले०१६२)

शांतिसूरि . —सं० १४५३ वै० शु० २ „ ले० १७७

„ —सं० १४५६ माघ शु० १२ शनि (नाहटा संग्रह)

„ —सं० १४५८ फा० कृ० ११ शुक्र (प्र० ले० सं० विनय० ले० १८३)

„ —सं० १४५८ फा० कृ० 1 शुक्र० (?) (पट्टावली समुच्चय पृ० २०५)

„ —सं० १४६२ मात्र कृ० ४ (जैन लेख संग्रह-नाहर ले० २४७८)

यशोदेवसूरि —सं० १४७६ वै० कृ० २ (जैन लेख संग्रह-लें० १८८२)

" —सं० १४८२ (जैन ले० संग्रह-लें० १९३१)

" —सं० १४८६ माघ शु० १ शनि (प्र० ले० सं० विनय ले० २६१)

—सं० १४८६ माघ शु० ५ गुरु („ ले० २६२)

" —सं० १४९९ भाद्र० शु० २ शुक्र० (जैं० गच्छ मतप्रबन्ध पृ० १०८)

" —सं० १५०१ ज्ये०कृ० १२ (जै० धा० प्र० ले० सं० भा० २ ले० ४८५)

" —सं० १५०७ फा० कृ० ३ (प०समु० पृ० २०५)

" —सं० १५०८ वै० कृ० २ (प्र० ले० सं० विनय ले० ४३०)

" —सं० १५११ माघ कृ० ५ शुक्र० (जै० धा० प्र० ले० सं० भा० १ ले० ४७१)

" —१५१३ वै० शु० २ (प० समु० पृ० २०६)

नन्नसूरि —सं० १५२८ (जै०ले० सं० नाहर० ले० २१११)

" —सं० १५२८ माघ कृ० ५ बुध (" ले० ५३९)

" —सं० १५२८ " (जै० धा० प्र० ले० सं० भा० २ ले० २२८)

,, सं०—१५३० वै० सु० ६ (प्र० ले० सं० विनय-
ले० ७२०, ७२१)

उद्योतनसूरि —सं० १५२८ चै० कृ० १३ सोम (प० समु०
पृ० २०६)

,, —सं० १५३३ ज्ये० शु० ५ शुक्र (प्र० ले० सं०
विनय० ले० ७५६)

,, —सं० १५३६ वै० ६ चन्द्र (जै० ले० सं०
नाहर० ले० १५५५)

,, —सं० १५३६ आषाढ़ शु० ६ (,, ले० १४६२)

,, —सं० १५४० ,, कृ० १ (प्र० ले० सं०
विनय ले० ८२३)

,, —सं० १५५१ पोष शु० १० (प्र० ले० सं०
विनय० ले० ८६३)

,, —सं० १५५६ पौष शु० १५ सोम (नाहटा संग्रह)

,, —सं० १५५८ चै० कृ० १३ सोम (जै० ले०
सं० नाहर ले० ६७१)

,, —सं० १५५६ आषाढ़ शु० १० बुध (प्र० ले०
सं० विनय० ले० ६०१)

,, —सं० १५६६ माघ कृ० २ (जै० धा० प्र० ले०
सं० भा० २ ले० ४४)

महेश्वरसूरि—सं० १५७५ आषाढ़ कृ० ७ रवि (प्र० ले० सं० विनय–ले० ६५६)

,, —सं० १५८३ फा० कृ० १ शुक्र (,, ले० ६७३)

,, —सं० १५९३ आषाढ़ शु० ३ रवि (नाहटा संग्रह)

यशोदेवसूरि राज्ये–सं० १६३७ भा० कृ० ३ (प० समु०पृ० २०६)

,, —सं० १६७८ द्वि० आ० शु० २ रवि (,, पृ० २०६)

,, —सं० १६८१ चै० कृ० ३ सोम (,, पृ० २०६)

यथाप्राप्त साधन सामग्री पल्लीवालगच्छीय आचार्य मुनि द्वारा प्रतिष्ठित लेखों की संक्षिप्त सूची ऊपर दी गई है।



पल्लीवाल गच्छ-साहित्य

१—महेश्वरसूरिकृत 'कालिकाचार्य कथा-सं० १३६५'।

२—आमदेवसूरिकृत 'प्रभावक चरित्र'।

३—शांतिसूरिकृत 'विधि करण शतक'।

४—नन्नसूरिकृत 'श्रीमंधर जिन स्तवन'।

५—महेश्वरसूरिकृत 'विचारसार प्रकरण'।

६—अजितदेवसूरिकृत 'कल्पसूत्रदीपिका'—सं० १६२७।

'उत्तराध्ययन टीका' सं० १६२६

'आचारांगदीपिका'

'आराधना'

'चन्दनवालावेलि पत्र ३

'चौवीश जिनावली' गाथा २५

७—उपरोक्त अजितदेव के शिष्य हीरानन्दकृत 'चौवोली चौपई और भी १—२ यतिकृत २—४ छोटे-छोटे स्तवनादि पट्टावली वाले गुटके में हैं।

नोट—उपरोक्त कृतियों की सूची श्री नाहटा जी ने अपने लेख 'पल्लीवालगच्छ पट्टावली' में दी हैं। आत्मानन्द अर्धशताब्दि ग्रंथ।

पल्लीवाल जाति

. इतिहास प्रेमी आचार्य श्री देवगुप्तसूरिजी महाराज (प्रसिद्ध नाम ज्ञान सुन्दर जी) पुस्तक "भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास" से।

इस जाति की उत्पत्ति मूल स्थान पाली शहर है; जो मारवाड़ प्रान्त के अन्दर व्यापार का एक मुख्य नगर था। इस जाति में दो तरह के पल्लीवाल हैं। १ वैश्य पल्लीवाल, २—ब्राह्मण पल्लीवाल और इस प्रकार नगर के नाम से और भी अनेक जाति हुई थीं; जैसे श्रीमाल नगर से श्रीमाल जाति, खंडेला शहर से खंडेलवाल, महेश्वरी नगरी से महेश्वरी जाति, उपकेशपुर से उपकेश जाति, कोरंट नगर से कोरटवाल जाति और सिरोही नगर से सिरोहिया जाति इत्यादि नगरों के नामों से अनेक जातियाँ उत्पन्न हुई थीं; इसी प्रकार पाली नगर से पल्लीवाल जाति की उत्पत्ति हुई है। वैश्यों के साथ ब्राह्मणों का भी सम्बन्ध था, कारण ब्राह्मणों की आजीविका वैश्यों पर ही थी अतः जहां यजमान जाते हैं वहां उनके गुरु ब्राह्मण भी जाया करते हैं जैसे श्रीमाल नगर के वैश्य लोग श्रीमाल नगर का त्याग करके उपकेशपुर में जा बसे तो श्रीमाल नगर के ब्राह्मण भी उनके पीछे चले आये। अतः श्रीमाल नगर से आए हुए श्रीमाल वैश्य और ब्राह्मण श्रीमाल ब्राह्मण कहलाये। इसी प्रकार पाली के

वैश्य और ब्राह्मण पाली के नाम पर पल्लीवाल वैश्य और पालीवाल ब्राह्मण कहलाये। जिस समय का मैं हाल लिख रहा हूँ वह जमाना क्रिया कांड का था और ब्राह्मण लोगों ने ऐसे विधि विधान रच डाले थे कि थोड़ी थोड़ी बातों में क्रिया कांड की आवश्यकता रहती थी और वह क्रिया कांड भी जिसके यजमान होते थे वे ब्राह्मण ही करवाया करते थे। उसमें दूसरा ब्राह्मण हस्तक्षेप नहीं कर सकता था; अत : वे ब्राह्मण अपनी मनमानी करने में स्वतंत्र एवं निरंकुश थे। एक वंशावली में लिखा हुआ मिलता है कि पल्लीवाल वैश्य एक वर्ष में पल्लीवाल ब्राह्मणों को १४०० लीकी और १४०० टके दिया करते थे तथा श्रीमाल वैश्यों को भी इसी प्रकार टैक्स देना पड़ता था। पंचशतीशाषोडशाधिका अर्थात ५१६ टका लाग दाया के देने पड़ते हैं। भूदेवों ने ज्यों ज्यों लाग दाया रूपी टैक्स बढ़ाया त्यों त्यों यजमानों की अरुचि बढ़ती गई। यही कारण था कि उपकेशपुर का मंत्री वहड़ ने म्लेच्छों की सेना लाकर श्रीमाली ब्राह्मणों से पीछा छुड़वाया। इतना ही क्यों बल्कि दूसरे ब्राह्मणों का भी जोर जुल्म बहुत कम पड़ गया। क्योंकि ब्राह्मण लोग भी समझ गये कि अधिक करने से श्रीमाली ब्राह्मण की भाँति यजमानों का सम्वंध टूट जायगा जो कि उनपर ब्राह्मणों की आजीविका का आधार था, अत: पल्लीवालादि ब्राह्मणों का उनके यजमानों के साथ सम्वंध ज्यों का त्यों बना रहा। मंत्री वहड़ की घटना का समय वि० सं० ४०० पूर्व का था यही समय पल्लीवाल जाति का समझना चाहिये।

खास कर तो जैनाचार्यों का मरुधर भूमि में प्रवेश हुआ और इन्होंने दुर्व्यसन सेवित जनता को जैनधर्म्म में दीक्षित करना प्रारम्भ किया। तब से ही उन स्वार्थ प्रिय ब्राह्मणों के आसन कांपने लग गये थे और उन क्षत्रियों एवं वैश्यों से जैनधर्म स्वीकार करने वाले अलग हो गये तब से ही जातियों की उत्पत्ति होनी प्रारम्भ हुई थी। इसका समय विक्रम पूर्व चारसौ वर्षों के आस-पास का था और यह क्रम विक्रम की आठवीं-नौवीं शताब्दी तक चलता ही रहा तथा इन मूल जातियों के अन्दर शाखा प्रतिशाखा तो बट वृक्ष की भांति निकलती ही गई जब इन जातियों का विस्तार सर्वत्र फैल गया तब नये जैन बनाने वालों की अलग-अलग जातियां नहीं बनाकर पूर्व जातियों में शामिल करते गये। जिसमें भी अधिक उदारता उपकेश वंश की ही थी कि नये जैन बनाकर उपकेश वंश में ही मिलाते गये। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो पालीवाल और पल्लीवाल जाति का गौरव कुछ कम नहीं है प्राचीन ऐतिहासिक साधनों से पाया जाता है कि पुराने जमाने में इस पाली का नाम फेफावती, मल्हिका, पालिका आदि कई नाम थे और कई नरेशों ने इस स्थान पर राज्य भी किया था। पालीनगर एक समय जैनों का मणिभद्र महावीर तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध था। इतिहास के मध्यकाल का समय पाली नगरी के लिये बहुत महत्व का था। विक्रम की बारहवीं शताब्दी के कई मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठाओं के शिलालेख तथा प्रतिष्टा कराने वाले जैन श्वेताम्बर आचार्य्यों

के शिलालेख आज भी उपलब्ध हैं इत्यादि प्रमाणों से पाली की प्राचीनता में किसी प्रकार के संदेह को स्थान नहीं मिलता है।

व्यापार की दृष्टि से देखा जाय तो भारतीय व्यापारिक नगरों में पाली शहर का मुख्य स्थान था। पूर्व जमाने में पाली शहर व्यापार का केन्द्र था। बहुत जत्था बन्द माल का निकाश, प्रवेश होता था, यह भी केवल एक भारत के लिये ही नहीं था पर भारत के अतिरिक्त दूसरे पाश्चात प्रदेशों के व्यापारियों के साथ पाली शहर के व्यापारियों का बहुत बड़े प्रमाण में व्यापार चलता था। पाली में बड़े बड़े धनाढ्य व्यापारी बसते थे और उनका व्यापार विदेशों के साथ तथा उनकी बड़ी-बड़ी कोठियां थी ? फारस, अरब, अफ्रीका, चीन, जापान, मिश्र, तिब्बत वगैरा प्रदेश तो पाली के व्यापारियों के व्यापार के मुख्य प्रदेश माने जाते थे।

जब हम पट्टावलियों, वंशावलियों आदि ग्रंथों को देखते हैं तो पता चलता है, कि पाली के महाजनों की कई स्थानों पर दूकाने थीं और जल एवं थल मार्ग से पुष्कल माल आता जाता था और इस व्यापार में वे बहुत मुनाफा भी कमाते थे। यही कारण था कि ये लोग एक धर्म कार्य में करोड़ों द्रव्य व्यय कर डालते थे। इतना ही क्यों पर उन लोगों की देश एवं जाति भाइयों के प्रति इतनी वात्सल्यता थी कि पाली में कोई स्वधर्मी एवं जाति भाई

आकर बसता तो प्रत्येक घर से एक मुद्रिका और एक ईंट अर्पण कर दिया करते थे कि आने वाला सहज में ही लक्षाधिपति बन जाता और यह प्रथा उस समय केवल एक पाली वालों के अन्दर ही नहीं थी पर अन्य नगरों में भी थी जैसे चन्द्रावती और उपकेश-पुर के उपकेशवंशी, प्राग्वट वंशी, अग्रहा के अगरवाल, डिडवाना के महेश्वरी आदि कई जातियों में थी कि वे अपने साधर्मी एवं जाति भाइयों को सहायता पहुँचा कर अपने बराबरी के बना लेते थे करीबन एक सदी पूर्व एक अंग्रेज इतिहास प्रेमी टॉड साहब ने मारवाड़ में पैदल भ्रमण करके पुरातत्व की शोध खोज का कार्य किया था। उनके साथ एक ज्ञानचन्द जी नाम के यति रहा करते थे उन्होंने भी इसका हाल लिखा है कि पाली के महाजन बहुत बड़ा उपकार करते थे।

इस उल्लेख से स्पष्ट पाया जाता कि मारवाड़ में पाली एक व्यापार का मथक और प्राचीन नगर था। यहाँ पर महाजन संघ एवं व्यापारियों कि बड़ी बस्ती थी।

पल्लीवाल जाति में जैनधर्म्म

यह निश्चयात्मक नहीं कहा जा सकता कि पल्लीवाल जाति में जैन धर्म का पालन करना किस समय से प्रारम्भ हुआ, पर पल्लीवाल जाति बहुत प्राचीन समय से जैन धर्म पालन करती आई है। पुरानी पट्टावलियों वंशावलियों को देखने से ज्ञात होता है कि पल्लीवाल जाति में विक्रम के चार सौ वर्ष पूर्व से ही जैन धर्म प्रवेश हो चुका था।

इसकी साक्षी के लिये कहा जा सकता है कि आचार्य स्वयं प्रभुसूरि ने श्रीमाल नगर में ९०,००० मनुष्यों को तथा पद्मावती नगरी के ४५,००० मनुष्यों को जैन धर्म की शिक्षा दीक्षा देकर जैन बनाये थे। बाद आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर नगर में लाखों क्षत्रियादि लोगों को जैन धर्म की दीक्षा दी और बाद में भी आचार्य श्री मरुधर प्रान्त में बड़े बड़े नगरों से छोटे छोटे ग्रामो में भ्रमण कर अपनी जिन्दगी में करीब चौदह लक्ष घर वालों को जैनी बनाये थे। जब पाली शहर श्रीमाल नगर और उपकेश नगर के बीच में आया हुआ है, भला यह आचार्य श्री के उपदेश से कैसे वंचित रह गया हो अर्थात पाली नगर में आचार्य श्री अवश्य पधारे और वहाँ की जनता को जैन धर्म में अवश्य दीक्षित किये होंगे। हाँ उस समय पल्लीवाल नाम की उत्पत्ति नहीं हुई होगी, पर पाली वासियों को आचार्य श्री ने जैन अवश्य बनाये

थे। आगे चल कर हम देखते हैं कि आचार्य सिद्धिसूरि पाली नगर में पधारते हैं और वहां के श्री संघ ने आचार्य श्री की अध्यक्षता में एक श्रमण सभा का आयोजन किया था जिसमें दूर-दूर के हजारों साधु साध्वियों का शुभागमन हुआ था। इस पर हम विचार कर सकते हैं कि उस समय पोलो नगर में जैनियों की खूब आबादी होगी तभी तो इस प्रकार का वृहद कार्य पाली नगर में हुआ था। इस घटना का समय उपकेशपुर में आचार्य रत्नप्रभुसूरि ने महाजन संघ की स्थापना करने के पश्चात दूसरी शताब्दी का बतलाया है। इससे स्पष्ट पाया जाता है कि आचार्य रत्नप्रभु सूरि ने पाली को जनता को जैन धर्म में दीक्षित कर जैन धर्म उपासक बना दी थी, उस समय के बाद तो कई भावकों ने जैन मंदिर बनाकर प्रतिष्ठा करवाई तथा कई श्रद्धा सम्पन्न श्रावको ने पाली से शत्रुंजयादि तीर्थो के संघ भी निकाले थे। इन प्रमाणों से इस निर्णय पर आसकते हैं कि पाली की जनता में जैन धर्म श्रीमाल और उपकेश वंश के समय प्रवेश हो गया था, जैन शासन में साधुओं का जिस नगर में विशेष विहार हुआ उस ग्राम नगर के नाम से गच्छ कहलाये। उपकेशपुर से उपकेश गच्छ, कोरंट नगर के नाम से कोरंट गच्छ और पाली नगर के नाम से पल्लीवाल गच्छ उत्पन्न हुआ। इस गच्छ की पट्टावली देखने से पता चलता है कि यह गच्छ बहुत पुराना है। जो उपकेश गच्छ और कोरंट गच्छ के वाद तीसरा नम्बर है।

सं० ३२९ पल्लीवाल गच्छ की उत्पत्ति का समय है।

जैन जातियों एवं वंशों की स्थापना

(ले० श्री अगरचंदजो नाहटा)

यह तो सुनिश्चित है कि भगवान महावीर के समय में जैन जातियों का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं था। सभी जाति के लोग जैन धर्मानुयायी थे। जैन आगम उत्तराध्ययन सूत्र से स्पष्ट है कि भगवान महावीर के समय जो वैदिक धर्म में जन्म से जाति का सम्वंध माना जाता था वह जैन धर्म को मान्य नहीं था ? गुणों से ही जाति की विशेषता जैन धर्म को मान्य थी। कर्म से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र होते हैं। महाभारत और बौद्ध ग्रंथ भी इसका समर्थन करते हैं।

मध्यकाल में जैनाचार्यो ने बहुत सी जाति वालों को जैन धर्म का प्रतिवोध दिया तो उनमें जैन संस्कार वंश परम्परा से चलते रहे इसके लिए उनको स्वतंत्र जाति या वंश के रूप में प्रसिद्ध किया गया; क्योंकि वैदिक धर्मानुयायी प्रायः समस्त वर्णो वाले माँसाहारी थे, पशुओं का वलिदान करते थे और बहुत से ऐसे अभक्ष भक्षण आदि के संस्कार उनमें रुढ़ थे जो जैन धर्म के सर्वदा विपरीत थे। इसलिए जैनों का जातिगत संगठन करना आवश्यक हो गया। उनका नाम करण प्राय : उनके निवास स्थान पर ही आधारित था। जैसा कि १२॥ वारह ज्ञाति सम्वंधी पद्यों से स्पष्ट है ;—

सिरि सिरिमाल ऊएसा पल्ली नामेण तहाय मेडते :
विश्वेरा डिडूया षंडूया तह नराण उरा ॥१॥
हरिसउरा जाइल्ला पुक्खर तह डिडूयडा ;
खडिल्लवाल अद्धं, वारस जाइ अहीयाड ॥२॥

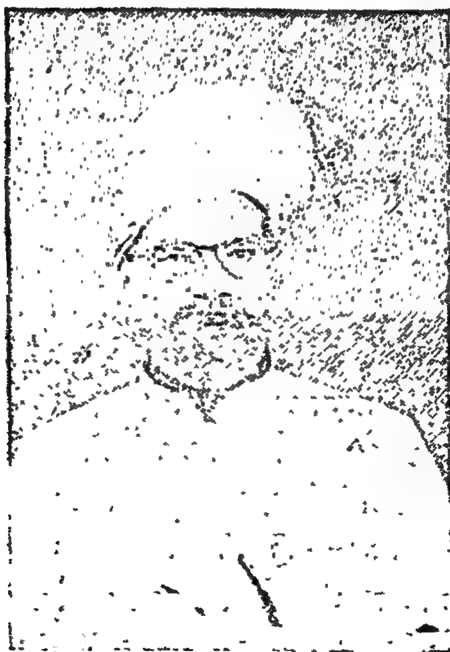
अर्थात श्रीमाल, ओसवाल, पल्लीवाल, मेड़तवाल, डिडू विश्वेरा, खंडव्या, नरायणा, हर्षोरा, जायलवाल, पुष्करा, डिडूयडा और आधे खंडेलवाल, ये साढ़े बारह जाति होती हैं। इन जाति के नामों से स्पष्ट है कि उनका नामकरण उनके निवास स्थान पर ही आधारित है। अत : पल्लीवाल जाति भी पल्ली या पाली से ही प्रसिद्ध हुई है।

जाति के साथ किसी धर्म विशेष का पूर्णत : सम्बंध नहीं हैं जिस प्रकार श्रीमाली ब्राह्मण भी हैं और श्रीमाल जैन भी हैं इसी तरह खंडेलवाल और पल्लीवाल ब्राह्मण और जैन दोनों हैं। ओसवाल पहले सभी जैन थे, फिर राज्याश्रय आदि के कारण कुछ वैष्णव हो गये, फिर भी अधिक संख्या जेनों की ही है। पल्लीवाल वैश्यों में भी सभी एक ही गच्छ के अनुयायी नही थे, यह प्राचीन शिलालेखों और प्रशस्तियों से स्पष्ट है। जिस प्रांत में जिस गच्छ का अधिक प्रभाव रहा था, जिसका जिससे अधिक सम्पर्क हुआ वे उसी के अनुयायी हो गये। जैन जातियों का प्राचीन इतिहास बहुत कुछ अंधकार में है, वही स्थिति पल्लीवाल जैन इतिहास की है। प्राप्त प्रमाणों से यथासम्भव इस पुस्तक में प्रकाश डाला गया है। इति

श्री अगरचंद जी नाहटा

[इस पुस्तक के लिखवाने में तथा ऐतिहासिक बातों की शोध में श्री नाहटाजी ने जैसा सहयोग दिया है, उसको देखते हुए यहाँ आपका संक्षिप्त परिचय देकर हम आपकी सेवा में धन्यवाद अर्पित करते हैं।

—नंदनलाल जैन]



जैन साहित्य के प्रकांड विद्वान, श्री अगरचन्द जी नाहटा

जैन साहित्य के प्रकांड विद्वान—

श्री अगरचन्दजी नाहटा

गेहुंआ रंग, लम्बा कद, छरहरा बदन, ऊँची किन्तु उलझी हुई, गंगा जमुनी मूछें, कमर में ढीली धोती और उसकी भी लांघ आधी खुली हुई या तो बदन पर लिपटी हुई अथवा गंजी पहने हुए आंखों पर चश्मा लगा कर हैसियन के बोरे या चटाई पर बैठे हुए जिनकी मुखमुद्रा गम्भीर और शान्त है, ऐसे एक साहित्य साधक को आप भी अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर में दिन के प्रायः सोलह घंटे बैठे पाएंगे। घर से बाहर बहुत कम जाते हैं। यदि काम से कहीं जाना हुआ तो बदन पर बंगाली कुर्ता, सिर पर मारवाड़ी पगड़ी, जिसके पेंच अस्त-व्यस्त रहते हैं, कंधे पर सफेद दुपट्टा, पैरों में चर्म-रहित जूते। यह है उनकी बाहरी वेश भूषा। जिनका यह परिचय हम यहाँ देने जारहे हैं वह हैं लक्ष्मी एवं सरस्वती के वरद-पुत्र श्री अगरचन्दजी नाहटा। वैसे लक्ष्मी एवं सरस्वती दोनों की एक हीं व्यक्ति पर कृपा हो ऐसा बहुत कम देखने में आता है लेकिन अगरचन्दजी पर दोनों ही कृपालु हैं। अपरिचित व्यक्ति उन्हें देखे तो सहसा विश्वास भी नहीं होगा कि यह सीधा-सादा दीखने वाला व्यक्ति विद्वान भी है और धनवान् भी। उनसे प्रत्यक्ष बात किए या सम्पर्क में आए बिना पता ही नहीं चलेगा कि वह इतने विद्वान हैं कि उनकी ख्याति केवल राजस्थानी जगत् में ही नहीं

भारत के हिन्दी साहित्य जगत् में भी है। हिन्दी शोध जगत् के तो यह चमकते हुए नक्षत्र हैं।

नाहटाजी का जन्म बीकानेर के ओसवाल नाहटा कुल में विक्रमी संवत् १९६० में चैत्र बदी ४ को हुआ था।

साहित्यिक तीर्थस्थान

नाहटाजी राजस्थानी भाषा और जैन साहित्य के चोटी के विद्वानों में माने जाते हैं। उनके पास अपना निजी अनुभव तो है ही, पर साथ में एक बड़ा पुस्तकालय भी है, जहाँ ३०,००० हस्त लिखित ग्रन्थ और इतने ही मुद्रित ग्रन्थों का विशाल संग्रहालय है। भारत के व्यक्तिगत संग्रहालयों में यह सबसे बड़ा है, इसे देखकर डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के मुँह से निकल गया कि—यह साहित्यिक तीर्थ-स्थान हैं"। अभय जैन ग्रन्थालय में सैकड़ों अमूल्य ग्रन्थों एवं पुरातत्व की पुस्तकों का संग्रह है। वहाँ भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक के विद्वान आते हैं या वहाँ से ग्रन्थ मांगकर लाभ उठाते हैं। नाहटाजी भी मुक्त हस्त इस अमूल्य साहित्य निधि को निःस्वार्थ भाव से वितरित करते हैं पुस्तकालय की विपुल सामग्री का जितना अधिक उपयोग हो सके उतना ही उन्हें सन्तोष होता है।

आजकल कई साहित्यिक अन्वेषक ऐसे मिलेंगे जो नाहटा जी से थीसिस लिखने के लिए विषय पूछते हैं। उनके लिए उपलब्ध साहित्य सामग्री की जानकारी एवं उनका मार्ग दर्शन

चाहते हैं। नाहटा जी कभी किसी को ना नहीं करते। सभी क
यथासाध्य सहयोग देते हैं। अपने अनुभव से साहित्य-अन्वेषण
के मार्ग को प्रशस्त कर देते हैं। अपने पास जो पुस्तकें नहीं होतं
वे दूसरी जगह से अपने नाम या कीमत से भी मंगाकर सहायत
करते हैं। शोध के कुछ विद्यार्थी तो इनके पास आकर निवास
भी करते हैं। शिष्य भाव से उनके पास बैठकर लाभ उठाते हैं
नाहटाजी की यह विशेषता है कि अपना सब काम करते हुए भी
ऐसे विद्यार्थियों को उचित मार्ग दर्शन व सहायता करते हैं।
राजस्थानी एवं जैन साहित्य में शोध करने वाले विद्यार्थी भली
भांति जानते हैं कि इन दोनों विषयों पर शोध कार्य करना हो
और थीसिस लिखना हो तो नाहटाजी की सहायता अनिवार्य
है। केवल नवीन शोध अन्वेषक ही नहीं, डाक्टरेट की पदवी
प्राप्त विद्वान भी शंका समाधान के लिए नाहटाजी से मार्गदर्शन
चाहते हैं। हाल ही की बात है कि अहमदाबाद से एक डाक्टरेट
प्राप्त विद्वान का पत्र आया था, जो भारत के एक प्राचीन ग्रन्थ
विमल देव सूरि के "पउमचरिय" पर शोध कर रहे हैं। यह
ग्रन्थ प्राकृत भाषा का है और वीर निर्वाण के ५३० वर्ष बाद
लिखा गया था। इस ग्रन्थ के विषय में उठी कई शंकाओं के
बारे में उन्होंने कई विद्वानों से बात चीत की थी किन्तु किसी
से उन्हें संतोषजनक और निश्चित मत नहीं मिल सका। उनमें
से कुछ ने शंकाओं के समाधान के लिए नाहटा जी से पूछने के
लिए ही लिखा। तात्पर्य यह है कि नाहटा जी के दृष्टिकोण एवं

विचारों को भारत के बड़े-बड़े विद्वान भी प्रामाणिक और तथ्य-पूर्ण मानते हैं। कई डाक्टरेट प्राप्त विद्वान विनोद में प्रायः कहते है—"नाहटा जी आप तो हम डाक्टरों के भी डाक्टर हैं। आपके अपरिमित ज्ञान की तुलना में हम लोगों का विश्वविद्यालयों में वर्षों से प्राप्त किया हुआ ज्ञान कुछ भी नहीं है।" उत्तर में नाहटा जी हंसते हुए कहते है—"मैं तो ५ वीं कक्षा का विद्यार्थी हूँ।" सचमुच नाहटा जी आज भी विद्यार्थी बने हुए हैं। उनकी अगाध ज्ञान प्राप्ति का यही कारण है।

पुरातत्व की शोध

नाहटा जी का प्रिय विषय है 'पुरातत्व की शोध'। वह इस बिषय के प्रकांड पंडित माने जाते हैं। उनके करीब २५०० निबन्ध और विभिन्न विषयों पर लिखे विद्वत्तापूर्ण लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। उनके लेख शोध पूर्णता के साथ-साथ नवीनता से परिपूर्ण भी होते है। प्राचीन और नवीन का संतुलन उनमें होता है। वह हमेशा कहते हैं—पीसे हुए को फिर दुबारा क्यों पीसना ? इसलिए उनके लेखों में नवीनता और स्वतन्त्र विचार होते हैं। उन्हें लिखने-पढ़ने का व्यसन-सा हो गया है। नाहटा जी द्वारा लिखित और संपादित करीब डेढ़ दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। "राजस्थान में हिन्दी के हस्त लिखित ग्रन्थों की खोज" के दो भाग साहित्य संस्थान, उदयपुर से प्रकाशित हुए हैं जिनमें कई अज्ञात ग्रन्थों का परिचय

है। बीकानेर जैन लेख संग्रह, समय सुन्दरकृत कुसुमांजलि, ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह, समय सुन्दर ग्रन्थावली आदि ग्रन्थ नाहटा जी की वर्षों की शोध और लगन के परिचायक हैं। राजस्थानी काव्य "जसवन्त उद्योत" और हिन्दी काव्य "कायम रासो" ग्रन्थ का भी उन्होंने अपने विद्वान भतीजे श्रीभंवर लाल जी नाहटा के साथ संपादन किया है।

प्रो० नरोत्तमदास स्वामी एम० ए० का मत है कि राजस्थानी भाषा के अज्ञात ग्रन्थों की खोज नाहटा जितनी शायद ही किसी ने की हो। हिन्दी में वीर गाथा काल, पृथ्वीराज रासो, विमलदेव रासो, खुमाण रासो आदि की जो नवीन शोध नाहटा जी ने हिन्दी संसार को दी है उसके लिए हिन्दी साहित्य जगत् नाहटा जी का ऋणी रहेगा। शोध कार्य में भी नाहटा जी गहरी दृष्टि से काम लेते हैं।

नाहटा जी का जीवन अत्यन्त सादगीपूर्ण एवं धार्मिक है। वह अभिमान, झूठ, कपट आदि से कोसों दूर रहते हैं। उन्होंने जैन सिद्धान्तों को अपने जीवन व्यवहार में गहराई से उतारा है। वह रात्रि में भोजन तो क्या पानी भी नहीं पीते हैं। कहीं एक दो मील चलना हो तो वह पैदल ही चलेंगे।

प्रत्येक कार्य में वह मितव्ययिता करते हैं। भोग विलास के लिए यह कभी खर्च नहीं करते। उन्हें ऐसा खर्च ना पसन्द है। वह आये हुए पत्रों का यथाशीघ्र उत्तर देते हैं। भारत के विद्वानों से पत्र व्यवहार द्वारा वह बराबर संपर्क बनाए रखते

है। वह समय के मूल्य को पहचानते हैं। इसलिए व्यर्थ बातों में कभी समय नहीं गवाँते। फिर भी वह हँसमुख और मिलनसार हैं।

नाहटा जी साल में केवल दो महीने व्यापार का कार्य करते हैं। बाकी सारा समय साहित्य सेवा में लगाते हैं। उनका परिवारिक जीवन सुखी और संतोषपूर्ण है। इनका यह परिचय तो सूर्य को दीपक दिखाने जैसा है। इति



लेखक का परिचय



श्री दौलतसिंह जी लोढा

आज से लगभग ५२ वर्ष पूर्व मेवाड़ के प्रसिद्ध क्षेत्र मांडलगढ़ के समीपस्थ ग्राम घामनिया के निवासी सेठ जगतचन्द जी लोढा के कनिष्ठ पुत्र के रूप में बालक दौलतसिंह का जन्म हुआ था। इनका परिवार उस समय मेवाड़ में विशेष सम्मान प्राप्त

था। संवत १९५६ के अकाल में लोगों को हर प्रकार से सहायता करने के कारण यह लोढा परिवार सर्व प्रिय हो गया था। लाड़ चाव में पलने वाले बालक दौलत को पढ़ाई की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जा रहा था। लड़के के बहनोई ने देखा कि बालक होनहार दीखता है इसे अवश्य पढ़ाना चाहिए, अतः वे इसे शाहपुरा ले गये। यह बालक कुछ तुतलाता था किन्तु पढ़ाई में एक दम चमक गया। एक ही वर्ष में कक्षा १ से चौथी में पहुंच गया। स्कूल के सभी अध्यापक बालक से बहुत खुश थे। दौलतसिंह ने क्रमशः मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करली। दशवीं कक्षा पास करने तक इनके परिवार की आर्थिक स्थिति एक दम कमज़ोर हो गई थी। माता पिता शिक्षा पर कुछ भी खर्च करने में असमर्थ थे, परन्तु इन्हें तो पढ़ने की धुन थी; विना किसी सहायता के अपने पैरों पर खड़े होकर पढ़ते ही रहे। ६ मास तक तो केवल चने की दाल उबली हुई खाकर इन्टर परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। इनकी तपस्या से सरस्वती मानो प्रसन्न हो गई और गद्य पद्य दोनों में ही इन्होने अच्छी योग्यता प्राप्त करली। पारिवारिक चिन्ता के कारण जीविकोपार्जन हेतु इन्हें राजस्थान छोड़कर भोपाल जाना पड़ा और वहाँ 'गोदावत जैन गुरुकुल' में गृहपति का कार्य भार सम्हाला। वहाँ कार्य करते हुए 'बागरा जैन गुरुकुल' की ओर से प्रकाशित विज्ञापन पढ़ने में आया तब आप 'बागरा' गये और वहाँ विराजित आचार्य श्री विजययतीन्द्र सूरि जी महाराज से प्रथम वार भेंट हुई। आचार्य श्री इनकी

स्पष्ट वादिता और धार्मिक प्रेम से प्रसन्न हो गये। इन्हें 'वागरा जैन गुरुकुल' में गृहपति बनाने का आदेश दे दिया। यह बड़ी लगन से काम करने लगे। साहित्य प्रेम तो इनमें अटूट था, फिर यह कविता भी अच्छी करते थे। सरस्वती की कृपा से इनकी कविता ऐसी होने लगी जो श्रोताओं को मन्त्र मुग्ध कर देती थी यह देखकर आचार्य श्रीमद्विजययतीन्द्रसूरि जी महाराज ने इन्हें आदेश दिया कि जिस प्रकार मैथिली शरण ने 'भारत-भारती' लिखी है तुम भी जैन समाज के लिये 'जैन जगती' तय्यार करो। आचार्य श्री की आज्ञा स्वीकार कर दौलतसिंह उर्फ 'अरविन्द' के नाम से इन्होंने बड़ी ही सुन्दर कविता तय्यार की। जैन समाज को प्रेरणा देने के लिए यह एक अनोखी कविता मानी जा सकती है। पुस्तक 'जैन जगती' जब छप कर सामने आई तो विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से इसकी प्रशंसा की। फिर तो इनका दिल खुल गया और प्रति वर्ष एक नवीन प्रसून सरस्वती देवी को भेट करने लगे।

श्री'अरबिन्द' कवि और लेखक दोनों ही थे। श्री अगर चन्द्र जी नाहटा के शब्दों में 'श्री दौलत सिंह 'अरविन्द' चहुंमुखी प्रतिभा सम्पन्न स्वाभिमानी तथा स्वाश्रयी थे। आचार्यश्री की कृपा और सरस्वती के भक्त होने के कारण इन्हे इतिहास और पुरातत्व में भी अच्छा ज्ञान प्राप्त होगया। 'राजेन्द्रसूरि स्मारक ग्रंथ,' 'प्राग्वाट इतिहास' और 'राणकपुरतीर्थ का इतिहास' आदि पुस्तकों के सम्पादन से आपकी योग्यता का परिचय भली प्रकार

मिलता है। गद्य पद्य में आपने जितनी भी पुस्तकें लिखीं वह पाठकों को बड़ी पसन्द आई। श्री अगरचन्द जी नाहटा के लिखने पर 'पल्लीवाल जैन इतिहास' के सम्पादन का भार भी इन्हें सौंपा गया, जिसे इन्होंने बड़े श्रम के साथ लिखा है। खेद है कि इसके छपने से पूर्व ही श्री 'अरविन्द' जी स्वर्गवासी हो गये। इनके बिछुड़ने से इनकी मित्र मंडली को ही दुःख नहीं हुआ बल्कि जैन समाज को अपने एक श्रेष्ठ कवि और अच्छे साहित्यकार के असमय ही छिन जाने से भारी धक्का लगा है। हमारे हाथ में तो 'जैन जगती' आदि इनकी रचित कोई भी पुस्तक जब आती है तभी श्री दौलतसिंहजी का मधुर हास्य, घुंघराली केश राशि, सादी वेष भूषा और साहित्य सेवा स्मरण हो आती है। यह मानना पड़ेगा कि इस पल्लीवाल इतिहास की सामग्री को भी इन्होंने बड़े परिश्रम और खोज के साथ संग्रहित किया तथा एक निष्पक्ष इतिहासकार की भाँति बिखरी ऐतिहासिक कलियों को चुनकर पल्लीवाल जैन इतिहास के रूप में लिख कर एक बड़ी कमी को पूरा किया है। इसके लिए मैं लेखक के परिश्रम और साहित्य प्रेम की सराहना करता हूँ।

जवाहरलाल लोढा
सम्पादक—'श्वेताम्बर जैन'' आगरा

शुद्धि-पत्र

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
प्रर्याप्त	पर्याप्त	३	१६
परन्त	परन्तु	४	२
व्यापारयों	व्यापारियों	४	८
ीन	हीन	६	१७
ल्लीगच्छ	पल्लीवाल गच्छ	१०	१८
ल्लीज्ञाति	पल्लीवाल ज्ञाति	१२	७
वद्यु ति	विश्रुति	१४	५
ाली	पालीवाल	१६	१४
ी	था	२०	११
ुनिपति	धनपत	२०	११
सघ	सिंध	२२	१७
ही	कही	२४	१३
लवाड़ा	देलवाड़ा	५०	१२
ताग्र	माताओं	५१	५२
टम्ब	कुटुम्ब	५४	१८
गवती	भगवती	६१	१२
गों	अंगों	६४	४
ठयारी	कठवारी	६५	२१

सदगणी	सद्गुणी	६६	८
पल्लवाल	पल्लीवाल	७१	१५
अभ्राप	आम्नाय	७४	१
शत्रंजय	शत्रुंजय	७६	११
पालू	पालूघ	८२	८
पल्लीवाल ज्ञातीय	(पल्लीवाल ज्ञातीय)	६७	१४
केशरीसिंह	केहरी सिंह	६६	५
केशरीसिंह	केहरी सिंह	६६	६
विष्णचंद	विष्णुचंद्र	११०	३
ब	बड़े	११२	८
Estblishment	Establishment	१२३	१४
असिस्टेंड	असिस्टेण्ट	१२३	१५
अमीरचन्दजी	अमरचन्दजी	१२३	२१
बी०ए० के	बी०ए०	१२३	२१
चारकर	व्यापार	१३५	३
रखने	रहने	१३५	१२
अतर	अन्तर	१३६	१६
ऋपवदेव	ऋषभदेव	१३६	२०
लघ	लघु	१५८	१२
पालिवालगच्छ	पल्लीवाल गच्छ	१६०	१४
जगतचंद	जड़ावचन्द्र	१८६	२

—०—